संपादनः
राजेश खिंदरी
रश्मि पालीवाल
सी.एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान

सहसंपादकः
माधव केलकर
दीपक वर्मा

चित्रांकनः
शिवेंद्र पांड्या

सहयोगः
टुलटुल विश्वास
जया विवेक

छायांकन :
मुखपृष्ठः रजनीकांत यादव
पिछला आवरणः आशा डिसूज़ा

मुखपृष्ठ पर संदर्भः
अनिता वैद्य

संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-1, सितंबर-अकटूबर 1994

संपादन एवं वितरणः

एकलव्य
कोठी बाज़ार,
होशंगावाद - 461 001 (मप्र.)
फोनः 07574-2518

वार्षिक चंदा (6 अंक) : 35 रुपए

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित

संदर्भ में छपे मतों से मानव संसाधन विकास मंत्रालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है

इस अंक में

संपादकीय

समाज हो या प्रशासन शिक्षकों से बड़ी-बड़ी अपेक्षाएं सभी करते हैं। इन अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए शिक्षकों को चाहिए कई तरह का समर्थन और सहयोग ताकि वे कक्षा में कुछ नया कर सकें। 'संदर्भ' शिक्षक साथियों की ओर सहयोग का हाथ बढ़ाने की एक छोटी-सी कोशिश है।

'संदर्भ' एक द्वैमासिक पत्रिका है, जिसका प्रकाशन मानव संसाधन मंत्रालय के एक प्रोजेक्ट के तहत किया जा रहा है। हमारा प्रमुख उद्देश्य माध्यमिक व उच्चतर माध्यमिक स्तर के शिक्षकों को विज्ञान और अन्य जुड़े हुए शैक्षिक मुद्दों पर ऐसी सामग्री उपलब्ध करवाना है जिसका उपयोग शिक्षण कार्यों में हो सके।

संदर्भ जैसी पत्रिका का प्रकाशन 'एकलव्य' संस्था के लिए एक तरह से अवश्यंभावी था। प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रमों में नवाचार के साथ-साथ पाठ्य-पुस्तक लेखन एवं शिक्षकों को प्रशिक्षण देना एकलव्य का प्रमुख
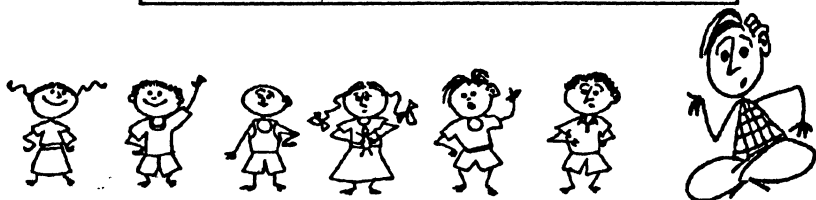
कार्य रहा है। एकलव्य के कार्यक्रम म. प्र. के 500 स्कूलों में चल रहे हैं। म.प्र. तथा प्रदेश से बाहर भी शिक्षकों एवं शिक्षा से जुड़े बहुत से समूहों ने इन प्रयासों में रुचि दिखाई है। हमने यह महसूस किया कि नवाचारों की कोशिशों को लेकर उन शिक्षकों के साथ भी ज़रूर संवाद करना चाहिए जो इन कार्यक्रमों के दायरे से बाहर हैं। इस तरह एकलव्य के प्रकाशनों की कड़ी में बाल-विज्ञान पत्रिका 'चकमक' और विज्ञान फीचर सेवा 'स्रोत' के साथ-साथ अब 'संदर्भ' भी जुड़ गया है।

प्रवेशांक में विषय सामग्री का चयन करते समय हम ने एक ओर जहां यह प्रयास किया है कि पाठ्यक्रम के विषयों को विस्तार और गहराई से समझा जाए, वहीं दूसरी ओर कुछ रुचिकर गतिविधियों, प्रयोगों एवं साहित्यिक सामग्री का भी समावेश किया गया है। इसके अलावा कक्षा में शिक्षकों के अनुभवों, अवलोकनों एवं विश्लेषणों पर भी हमने अपना ध्यान केंद्रित किया है।

संदर्भ के माध्यम से हम एक ऐसा मंच तैयार करना चाहते हैं जहां से शिक्षक और शिक्षा में रुचि रखने वाले अन्य सब अपने विचार, अनुभव और नए प्रयोग सबके सामने रख सकें। यह अंक इस दिशा में एक प्रारंभिक-सा प्रयास है। अगले अंको का रूप निखारने के लिए हमें आपके सहयोग की भी ज़रूरत है। किन विषयों पर गतिविधियां या प्रयोग सामग्री जुटाई जाए? कौन से विषय ऐसे हैं जिन्हें विस्तार से समझाने की ज़रूरत महसूस होती है। अगर इस सबके बारे में बता पाएं तो बहुत मदद मिलेगी।

और फिर आपके पास भी तो अनुभवों का एक खज़ाना है ही! उन्हें भी आप लिख भेजेंगे न...?

संपादक मंडल
संदर्भ
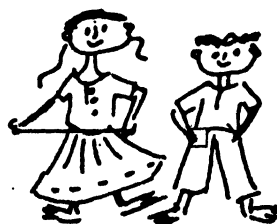
बहार आने का कारण

सुशील जोशी

कैसे तय होता है पौधे में कि फूल कब खिलने हैं?
एक रोज़मर्रा घटना की गहराई से जांच-पड़ताल।

कई बार ऐसी साधारण-सी बातों में से इतने पेचीदा सवाल निकलते हैं कि दंग रह जाना पड़ता है। ऐसी ही एक सामान्य-सी बात है फूलों का खिलना। हमारे देखते-देखते पेड़-पौधे बड़े होते हैं और इनमें फूल खिलते हैं। है तो साधारण-सी बात, रोज़ की देखी हुई, मगर इसके बारे में सोचें तो उलझन बढ़ती जाती है। यह तो आपने भी देखा होगा कि हर पेड़-पौधे पर फूल आने का अपना एक समय होता है। आम-जामुन बसंत में बौराते हैं जबकि गेहूं और चना शरद ऋतु में। पलाश व गुलमोहर भरी गर्मी में फूलते हैं।

इसके अलावा कोई पौधा तो बीज से निकलने के दो-तीन महीने के अंदर फूलने लगता है जैसे गेहूं, धान, मक्का, आदि जबकि किसी-किसी को सालों लग जाते हैं। और किसी-किसी को सालों क्या दशकों लग जाते हैं - बांस के बारे में ज़रूर सुना होगा आपने।

तो यहां दो सवाल हो गए। पहला यह कि पेड़-पौधों को कौन बताता है कि चलो अब उमर हो गई फूल बनाना शुरू करो। दूसरे शब्दों में पौधे के अंदर

वह कौन-सी प्रक्रिया है जो एक हद तक समय गुज़रने और निश्चित विकास हो जाने के बाद फूल बनाने की घंटी बजाती है।

दूसरा सवाल यह है कि हर साल पौधों को कैसे पता चलता है कि फूलने का मौसम आ गया है। यानी वर्ष का एक निश्चित समय आ पहुंचा है अब फूल बनाना चाहिए।

आइए इन प्रश्नों के उत्तर खोजें। उत्तर खोजने के लिए हम उन सब प्रयोगों के निष्कर्षों का सहारा लेंगे जो पिछली एक शताब्दी में दुनियाभर में कई वैज्ञानिकों ने बहुत मेहनत और मशक्कत करके किए हैं।

चूंकि सामान्य तौर पर पौधों को किसी प्रकार यह अंदाज़ लग जाता है कि वृद्धि का एक विशेष स्तर हासिल हो चुका है, अब फूल खिल सकते हैं; इसलिए हम कह सकते हैं कि उनमें इस बात का हिसाब रखने का कोई तरीका अवश्य होगा। फूल न आने से पूर्व तक की अवस्था को पौधों की किशोरावस्था कहा जाता है। फूल आने की स्थिति आ जाए तो कहा जाता है कि पौधा वयस्क या परिपक्व हो चुका है। जब तक पौधा (या पेड़) वयस्क न हो जाए तब तक कितने ही सही मौसम आकर चले जाएं फूल नहीं लगेंगे। मसलन आम को ही लें – बसन्त आता है मगर कम उम्र के आम के पेड़ों पर फूल नहीं लगते। ऐसा कैसे होता है?

ऐसी भी होती हैं घड़ियां

इस बारे में अधिकतर वैज्ञानिकों का मत है कि फूलने की उम्र का निर्धारण पत्तियों की संख्या से होता है। जैसा कि सभी जानते हैं पानी, कार्बन डायऑक्साइड और सूर्य प्रकाश का इस्तेमाल करके पत्तियां ही भोजन बनाती हैं पूरे पौधे के लिए। इसलिए पत्तियों की कुल संख्या और सेहत से ही तय होता है कि पौधे या पेड़ में कितना भोजन बनाने की हैसियत है।

कोई पौधा फूले, उससे पहले ज़रूरी है कि पौधे में फूल का पोषण करने तथा बीज व फल का निर्माण करने के लिए पर्याप्त भोजन हो। आखिर फूलने की प्रमुख वजह तो बीज बनाना ही है न? फूल पौधे के प्रजनन का साधन है। इसलिए फूलों को खिलने की अनुमति तभी मिल सकती है जब पौधे में उसे लक्ष्य तक पहुंचाने यानी बीज बनाने तक की हैसियत हो। अर्थात पौधा जब वृद्धि के एक खास मुकाम तक पहुंच जाए तभी फूल खिल सकते हैं।

बहुत से सालाना उगने वाले पौधों के बारे में तो इतने पक्के तौर पर कहा जा सकता है कि इस वनस्पति के पौधों में जब तक पांच पत्ते नहीं आ जाएं तब तक फूल लग ही नहीं सकता। चाहे पौधे को अन्य सब अनुकूल स्थितियां मिल जाएं। ऐसे ही किसी वनस्पति में फूलों का लगना सात पत्तों के बाद ही शुरू हो सकता है। शायद बड़े पेड़ों में इतनी निश्चितता के साथ पत्तियों की संख्याओं के बारे में नहीं कहा जा सकता पर उनमें भी यह पता करने के लिए कि पेड़ के पास इतने सारे फूलों, उनसे बनने वाले फलों और बीजों के लिए पर्याप्त भोजन है कि नहीं, ज़रूर कोई तरीका होता होगा इसी तरह का।

पौधों के कई हिस्से प्रकाश के प्रति संवेदनशील होते हैं यह तो सब जानते ही हैं - कई फूलों का दिन को खिलना और रात को बन्द होना, कई पेड़-पौधों की पत्तियां रात को बन्द होते देखी ही होंगी आपने......। यह भी देखा गया है कि दिन में भी सूर्य के प्रकाश की दिशा में बदलाव के साथ-साथ पत्तियां थोड़ा-बहुत हिलती रहती हैं, उनका कोण बदलता रहता है।

पर मज़ेदार बात यह है कि अगर पौधे को बिल्कुल अंधेरे में रखा जाए तो भी एक निश्चित समय के अन्तराल पर उसकी पत्तियां अपनी दिशा बदलती रहती हैं जैसे कि उनके पास कोई घड़ी हो! इनमें से किसी में बदलाव 27 घंटों में होता है तो किसी में 22 घंटे में। पेड़-पौधों की इस अन्दरूनी

घड़ी के बारे में हम बहुत कम जानते हैं पर इतना तो कहा जा सकता है कि शायद पौधे को ऐसी घड़ियों से भी समय के गुज़रने और किशोरावस्था से वयस्क बन जाने का ख्याल लगता होगा।

गुल खिलाने की चाबी कहां?

अब मान लो कि पेड़ या पौधा वयस्क हो गया है, उसकी फूल लगने की उम्र हो गई है - तो फिर सवाल उठता है कि आखिर फूल लगने की यह प्रक्रिया नियंत्रित कहां से होती है। पौधे के कौन-से हिस्से में है इसकी बागडोर।

अभी भी इस बात को लेकर वैज्ञानिकों गें काफी मतभेद हैं।

यह तो आप जानते ही हैं कि फूल, शाखाओं, टहनियों के सिरे (शीर्ष) पर लगते हैं। वैज्ञानिक यह समझने की कोशिश कर रहे हैं कि क्या यह शीर्षस्थ भाग फूल बनाने के मामले में स्वायत्त होता है या इसे शेष्र पूरे पौधे से कोई संकेत मिलता है कि चलो हो जाओ शुरू! इन दोनों बातों, स्वायत्तता व शेष पौधे से संकेत, के पक्ष में दलीलें भी हैं और प्रमाण भी। ऐसा प्रतीत होता है कि हर वर्ष शीर्ष की कोशिकाओं में जब एक निश्चित संख्या में विभाजन हो चुके होते हैं तब अपने आप वह फूल वाली स्थिति में पहुंच जाता है। ऐसा आभास मिलता है मानो शीर्ष की कोशिकाओं के विभाजन से कोई खास रसायन इकट्ठा हो रहा हो और जब उस रसायन की मात्रा एक विशेष हद से ज़्यादा हो जाए तो पौधे को फूल बनाने का संकेत मिलता है। इस समय यदि बाकी परिस्थितियां अनुकूल हों तो फूल खिल जाएंगे। बहरहाल यहां हम उन प्रयोगों के वर्णन में नहीं घुसेंगे जिनके माध्यम से इस गुत्थी को सुलझाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

ऊपर हमने कहा कि पौधा एक बार वयस्क अवस्था में पहुंच जाए तो फूल खिल सकते हैं। तो यह कैसे पहचाना जाए कि वयस्क अवस्था कौन-सी है? क्या पौधे की रचना में अन्य कोई परिवर्तन भी होते हैं, जिनसे हम कह सकें कि अमुक पौधा वयस्क अवस्था में है? इस सवाल का उत्तर 'हां' भी है और 'नहीं' भी।

पर इतना तो पक्का मालूम है कि वनस्पतियों में कई ऐसे रसायन पाए जाते हैं जो उनकी वृद्धि के नियामक होते हैं। इनमें से कुछ रसायन वैज्ञानिकों ने शुद्ध रूप में प्राप्त भी कर लिए हैं। इनसे प्रयोग करना संभव है। इन रसायनों के आधार पर ही वृद्धि की बारीकियों को समझना संभव हुआ है।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यही रसायन किसी न किसी तरह से अकेले-अकेले या श्रृंखला के रूप में वयस्कता को भी नियंत्रित करते हैं किन्तु प्रयोगों के परिणाम इतने विरोधाभासी हैं कि इस प्रक्रिया का कोई सामान्य चित्र बना पाना अभी तक तो संभव नहीं हुआ है। हां, यह

कई पौधों में वयस्क अवस्था में पहुंचने पर गौरतलब परिवर्तन होते हैं जबकि कई अन्य पौधों में ऐसे कोई अवलोकनीय परिवर्तन नहीं होते। मसलन अंग्रेज़ी आइवी की बेल (सिरपेंचे की लता) में किशोरावस्था तथा वयस्क अवस्था की तुलना करने पर बहुत से अन्तर दिखाई देते हैं:

क.	किशोरावस्था के लक्षण	वयस्क अवस्था के लक्षण
1.	तीन या पांच खण्डदार पत्ती	पूरी अण्डाकार पत्ती
2.	पत्तियों की जमावट एकान्तर	पत्तियों की जमावट सर्पिलाकार
3.	नई पत्तियों व तने में रंजक	रंजक अनुपस्थित
4.	तना रोएंदार	तना चिकना
5.	फूल नदारद	फूल मौजूद
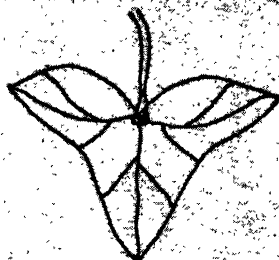
वयस्क होने के साथ इस पौधे की ऊपर चढ़ने की प्रवृत्ति में भी अंतर आता है। परन्तु उपरोक्त तुलना से यह न समझें कि इस या उस लक्षण की वजह से वयस्क अवस्था प्राप्त हुई। और वैसे भी ऐसे स्पष्ट अंतर बहुत कम प्रजातियों में पाए जाते हैं।

ज़रूर है कि एक बार वयस्क अवस्था आ जाने के बाद वापस किशोरावस्था में लौटने के उदाहरण बिरले ही हैं। यानी पौधों में अवस्था को स्थायित्व देने की भी कोई व्यवस्था ज़रूर है।

बहरहाल, वयस्क अवस्था आ गई, पौध या पेड़ फूलने को तैयार हैं, अब और क्या चाहिए? दूसरे शब्दों में क्या वयस्क होते ही फूल लगने लगेंगे या किसी अन्य कारक का भी नियंत्रण होता है इस पर? यह बात आम अनुभव की है कि कई पौधे ताउम्र फूल नहीं देते। खासकर सड़क किनारे, जहां यातायात ज़्यादा होता है, वे वृक्ष ठीक से फूलते नहीं। आखिर अब कौन रोक रहा है उन्हें बौराने से?

इस संबंध में कुछ रोचक प्रयोग हुए हैं जिनसे बात का कुछ हद तक खुलासा मिला है। आइए, कुछ प्रयोगों व उनके परिणामों पर नज़र डालें।

छोटे-बड़े दिनों का चक्कर

गार्नर और एलार्ड नामक दो वैज्ञानिकों ने सन् 1920 में सोयाबीन के साथ कुछ प्रयोग किए। उन्होंने पाया कि सोयाबीन की बिलोक्सी नामक किस्म की मज़ेदार बात यह है कि उसे बोने की तारीख कुछ भी हो, फूल लगभग एक ही समय पर आते हैं। अगर उसके कुछ पौधे देर से बोए जाएं तो भी वे सब के साथ ही खिलेंगे। यानी बोने से लेकर फूल खिलने की अवधि निश्चित नहीं है, कम-ज़्यादा हो सकती है। पर क्योंकि सब फूल एक-साथ खिलते हैं इसलिए कोई कारक ज़रूर है जो उन्हें नियंत्रित करता है।

उन्होंने इसी तरह के प्रयोग तम्बाकू की एक किस्म मैरीलैण्ड मैमथ के साथ भी किए। इसे जब गर्मियों में वाशिंगटन में लगाया गया तो पौधा तो खूब बड़ा हो गया मगर फूल नहीं लगे। इसके विपरीत जब इसी पौधे की कलम जाड़े के दिनों में 'ग्रीनहाउस' में तापमान बढ़ाकर लगाई गई तो बहुत छोटे पौधों पर भी फूल लग गए। (पौधों-फसलों को प्लास्टिक या कांच की चादर से ढक कर उनके वातावरण को नियंत्रित किया जाता है - जैसे तापमान, आर्द्रता आदि। इसे ग्रीनहाउस कहते हैं।)

वास्तव में गार्नर और एलार्ड फूल के प्रयोग नहीं कर रहे थे। वे तो पौध संवर्धन (plant breeding) में रुचि के कारण प्रयोग में जुटे थे। परन्तु इस 'आकस्मिक' घटना, यानी मैरीलेण्ड के पौधे का जाड़े के दिनों में ग्रीनहाउस में फूल देना, को वे अनदेखा न कर सके

और फूल लगने, न लगने की बात को समझने में जुट गए। उन्होंने देखा कि तापमान और प्रकाश की तीव्रता का फूलने की क्रिया पर असर नहीं पड़ता, तब उन्होंने दिन की लंबाई की जांच की। इसके लिए उन्होंने सोयाबीन व तम्बाकू के पौधों को ही चुना। गर्मियों में इन्हें लगाकर कुछ पौधों को तो खुले में ही रहने दिया। कुछ पौधों को अलबत्ता वे रोज़ दिन के समय, अंधेरी झोपड़ी में रख देते थे। यानी इन पौधों के लिए उन्होंने दिन को कृत्रिम रूप से छोटा कर दिया।
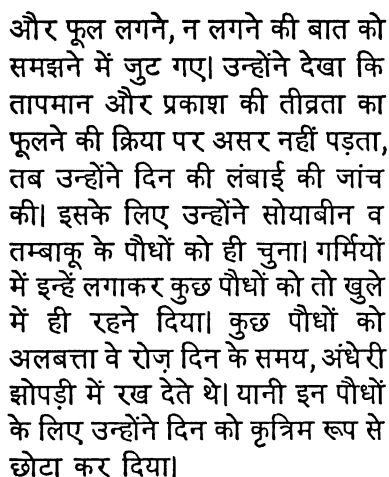
उन्होंने पाया कि इस तरह कृत्रिम रूप से छोटे दिन का प्रभाव यह हुआ कि सोयाबीन और तम्बाकू दोनों पर ही फूल खिल गए। इसके आधार पर उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि इन पौधों पर फूल तभी खिलते हैं जब दिन की लंबाई (यानी प्रकाश अवधि) काफी छोटी हो। प्राकृतिक रूप से यह परिस्थिति सितंबर में बनती है। और इसीलिए ये पौधे सितंबर में फूलने में आनाकानी नहीं करते।

सोयाबीन और तंबाकू जैसे पौधों को छोटे दिन के पौधे कहा जाने लगा क्योंकि इन पौधों में फूल आने के लिए एक सीमा से छोटे दिन की ज़रूरत होती है। इसके विपरीत लंबे दिन के पौधे उन्हें कहा गया जिन्हें एक हद से ज़्यादा बड़े दिन ज़रूरी हैं। बहुत से पौधे ऐसे भी हैं जिन में फूल खिलने की शुरुआत दिन की लंबाई से तय नहीं होती। ये उदासीन पौधे कहलाते हैं।

गार्नर एवं एलार्ड ने अपने प्रयोगों में ताप, प्रकाश तीव्रता, आर्द्रता, मिट्टी में पोषक तत्व, मिट्टी में नमी आदि सभी कारकों का अध्ययन किया और पाया कि इनसे फूलों के खिलने पर कोई असर नहीं पड़ता। इस सबके बाद ही उन्होंने प्रकाश अवधि के प्रभाव का अध्ययन किया।

अंधेरा या रोशनी

आज भी हमारी समझ मोटे-मोटे तौर पर वही है कि फूलों के खिलने में दिन-रात की लम्बाई का हाथ है। परन्तु एलार्ड और गार्नर के प्रयोगों और निष्कर्षों के कई साल बाद एक और चीज़ जानने को मिली जिससे वह समझ थोड़ी-सी बदली है। एलार्ड और गार्नर ने माना था कि फूल खिलने का संकेत दिन की लम्बाई यानी प्रकाश की अवधि पर निर्भर करता है। परन्तु सन् 1938 में किए गए कुछ प्रयोगों से साबित हुआ कि यह संकेत दिन पर नहीं, बल्कि रात पर निर्भर करता है। यानी प्रकाश की नहीं परन्तु अंधकार

की अवधि से मिलता है फूल खिलने का संकेत।

स्वाभाविक है मन में सवाल उठेगा कि इन दोनों में क्या अन्तर है, यह तो एक ही बात हुई। परन्तु वास्तव में ये दोनों बातें एकदम अलग हैं। संकेत अंधकार पर निर्भर करता है-इसका क्या अर्थ है, छोटी-रात-बड़ी-रात के पौधे किन्हें कहते हैं, क्या सिर्फ दिन-रात का ही प्रभाव पड़ता है फूलों के खिलने पर,..... यह सब बातें अब अगले अंक में।

(सुशील जोशी - विज्ञान एवं पर्यावरण विषयों पर सतत लेखन। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से गहरा जुड़ाव।)

इस लेख में साज-सज्जा के लिए इस्तेमाल किए गए चित्र ताजमहल, आगरा और शालीमार बाग, लाहौर की इमारतों पर पत्थरों से की गई सजावट का काम और कपड़े पर की गई कशीदाकारी से लिए गए हैं। ये मुग़ल कला के बेहतरीन नमूने हैं।

● ● ● ● ●

अद्भुत उल्लू

इन चित्रों को ध्यान से देखकर बताने की कोशिश कीजिए कि दोनों में से कौन-स चित्र उल्लू के मुंह का है? क्या कहा ... बता पाना मुश्किल है! शुरुआत में हम भी परेशान हो गए थे लेकिन फिर गौर से देखा तो मालूम हुआ।

इस पिग्मी उल्लू को प्रकृति ने दुश्मनों से बचाव का अनोखा हथियार दिया है पिग्मी उल्लू के सिर के पीछे रंगीन पंखों से ऐसी आकृतियां बनी होती हैं कि लगत है मानो आंखें और चोंच बनी हों और उल्लू हमारी ओर देख रहा हो। अब आप ही बताइए उल्लू पर पीछे से हमला बोलने वाला भी उलझन में फंस जाएगा न। अगर कोई घूरकर देख रहा हो तो चुपके से उस पर हमला नहीं बोला जा सकता, यह सोचकर शिकारी शाय चुपचाप आगे बढ़ जाएगा, है न?!

(सेंक्चुरी पत्रिका से

आजकल हर कहीं कम्प्यूटर के बारे में सुनने को मिलता है। इसमें क्या होता है, कैसे काम करता है, उससे काम लेने के लिए हमें क्या-क्या करना पड़ता है, कुछ प्रारंभिक जानकारी।

कम्प्यूटर : एक अनोखी मशीन

अमिताभ मुखर्जी
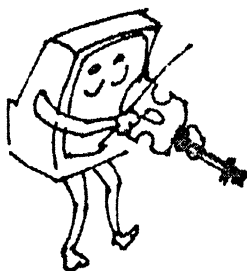
प्राय: कहा जाता है कि आज का दौर 'कम्प्यूटर-युग' है। अमरीका आदि विकसित देशों में तो शायद ही आम ज़िन्दगी का कोई ऐसा पहलू हो जो इस से अछूता है। वहां बैंकों में लेन-देन कम्प्यूटर के ज़रिए होता है, दुकानों में हिसाब कम्प्यूटर से किया जाता है, इसके द्वारा बनाए गए चित्र हर जगह देखने को मिलते हैं, यहां तक कि कम्प्यूटर रचित संगीत भी सुनने को मिलता है। अपने देश में कम्प्यूटर का उपयोग अभी इतना नहीं फैला है। फिर भी हम में से कई लोगों ने कम्प्यूटरीकृत रेल आरक्षण का लाभ उठाया होगा। 'सुरभि' जैसे कार्यक्रमों में कम्प्यूटर द्वारा बनाए गए चित्र देखने को मिलते हैं। ऐसे चित्र कितने जीवन्त होते हैं, यह भी विदेशी फिल्म 'जुरासिक पार्क' में हम में से कुछ लोगों ने देखा होगा। कम्प्यूटर का एक विशेष भारतीय उपयोग – कम्प्यूटर द्वारा निकाली गई जन्मपत्री! समय के साथ-साथ कम्प्यूटरों का उपयोग और भी बढ़ेगा व व्यापक होगा। इसलिए ज़रूरी है कि इनके बारे में कुछ मोटी-मोटी जानकारी हम सब हासिल करें। क्या आपने कभी नज़दीक से कम्प्यूटर देखा है? नहीं! हो सकता है कि अगले कुछ सालों में आप भी इसका इस्तेमाल करने लगें।

आखिर कम्प्यूटर है क्या ?

मोटे तौर पर देखा जाए तो कम्प्यूटर एक मशीन है, जो बहुत तेज़ी से जोड़-घटाना, गुणा-भाग कर सकती है। कितना तेज़? यूं समझ लीजिए कि यह एक सेकंड में एक लाख जोड़ कर लेता है। इससे भी कहीं ज़्यादा तज़ ह सुपर-कम्प्यूटर, लेकिन अपने लिए तो यही काफी है।

कम्प्यूटर है तो बहुत तेज़, लेकिन वह अपनी तरफ से कुछ नहीं कर सकता। ठीक वही करता है जो हम कहते हैं।यानी हम उसे निर्देश देते हैं और उनके मुताबिक वह काम करता है। अब यहां पर एक समस्या खड़ी हो जाती है।

मान लीजिए घर के खर्चे का हिसाब कम्प्यूटर से करना है। हम एक-एक कर के आटा, दाल, चावल आदि की कीमतों से उनकी खरीदी गई मात्रा को गुणा करते हैं और इन आंकड़ों को जोड़ते जाते हैं। जैसे "30 अखबार, 1.50 रुपए प्रति अखबार" बराबर 45.00 रुपए।" अब इस गुणा को करने में कम्प्यूटर को एक सेकंड का हज़ारवां भाग भी नहीं लगेगा। लेकिन हर कदम पर क्या करना है यह तय करके निर्देश देने में हमें कई सेकंड लग जाएंगे। तो ऐसे कम्प्यूटर की तेज़ी का फायदा ही क्या हुआ? (इस तरह काम करने वाली मशीनें उपलब्ध हैं, उन्हें केल्क्युलेटर कहते हैं।)
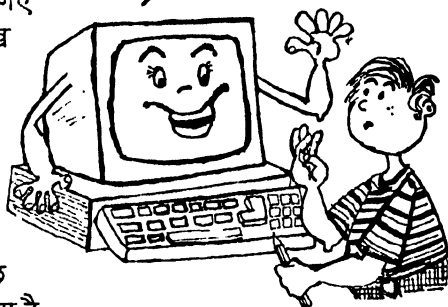
प्रोग्रामिंग (programming)

कम्प्यूटर और केल्क्युलेटर में मुख्य अन्तर है - प्रोग्रामिंग। प्रोग्राम शब्द का अर्थ है कार्यक्रम। कम्प्यूटर प्रोग्राम सही मायने में एक कार्यक्रम है कम्प्यूटर के लिए। यानी यह निर्देशों का एक क्रमबद्ध सिलसिला है, जो शुरू में ही कम्प्यूटर को दे दिया जाता है, जैसे:

1. दी गई पहली संख्या लो। (यह अखबारों की संख्या है।)
2. क्र.1 की संख्या को 1.50 से गुणा करो। इस जबाव को याद रखो।

3. दी गई दूसरी संख्या लो। (यह खरीदी गई शक्कर की मात्रा है।)
4. क्र. 3 की संख्या को 16.00 से गुणा करो। जवाब याद रखो।
5. क्र.2 और क्र.4 की संख्याओं को जोड़ो और उनका जोड़ याद रखो।

कम्प्यूटर के प्रोग्राम लिखने की प्रक्रिया प्रोग्रामिंग कहलाती है। यह अपने आप में एक कला मानी जाती है – आखिर अच्छा कार्यक्रम बनाना आसान नहीं है।

ऊपर दिए गए उदाहरण में एक और बात गौर करने लायक है। इसमें यह समझा गया है कि दी गई संख्याएं (यानी कि अखबारों की संख्या, शक्कर का वज़न इत्यादि) एक के बाद एक क्रम से कम्प्यूटर को उपलब्ध रहेंगी। 'दी गई संख्याएं' इसके लिए अंग्रेज़ी शब्द है डेटा या डाटा (data)। ज़ाहिर है कि प्रोग्राम और डाटा दोनों ही कम्प्यूटर को शुरू में ही मिल जाने चाहिए।
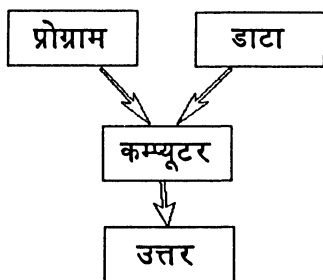
इस उदाहरण में निर्देशों का सिलसिला प्रोग्राम है और बाज़ार-दरों की सूची डाटा।

कम्प्यूटर के कलपुर्ज़े

एक कम्प्यूटर के डिब्बे के अन्दर क्या-क्या कलपुर्ज़े होते हैं, इसकी विस्तार से चर्चा तो हम यहां पर कर नहीं सकते। पर मोटी-मोटी कुछ बातें हैं, जो ऊपर के उदाहरण से उभरती हैं। हर कम्प्यूटर की बनावट में तीन तरह की चीज़ें ज़रूर होंगी।

1. वह हिस्सा जहां डाटा पर जोड़-घटाना आदि का काम (अंग्रेज़ी में प्रोसेसिंग) किया जाता है। इस हिस्से को **प्रोसेसर** (processor) कहते हैं। अक्सर एक कम्प्यूटर में एक से ज़्यादा प्रोसेसर होते हैं। पर उनमें एक सबसे महत्वपूर्ण होता है जिसे सेंट्रल प्रोसेसिंग यूनिट (CPU) कहते हैं। यही है कम्प्यूटर का 'दिमाग'।

2. **स्मृति** (memory): हमने ऊपर देखा है कि कई बार हमें कम्प्यूटर को कहना पड़ता है 'याद रखो'। याद रखने का काम जिस हिस्से में होता है, उसे कम्प्यूटर की याद या स्मृति कहते हैं।

कुछ संख्याओं की ज़रूरत सिर्फ गणना की अवधि तक ही होती है, एक कदम आगे बढ़ा लेने के बाद इन्हें याद रखना ज़रूरी नहीं होता। इन के लिए

कम्प्यूटर प्रोग्राम
डाटा
क्र.
मात्रा
दर
x
y
1
30
1.50
2
5
16.00
3
...
...
शुरू
क्रमांक = 1
कुल जोड़ = 0
इस क्रमांक की वस्तु की मात्रा लो
x
इसी क्रमांक की वस्तु की दर लो
y
दोनों संख्याओं को गुणा करो
z = x * y
z को कुल जोड़ में जोड़ो
आगे और डाटा है?
यदि हां, तो
अगले क्रमांक पर चलो
उत्तर = कुल जोड़
काम समाप्त
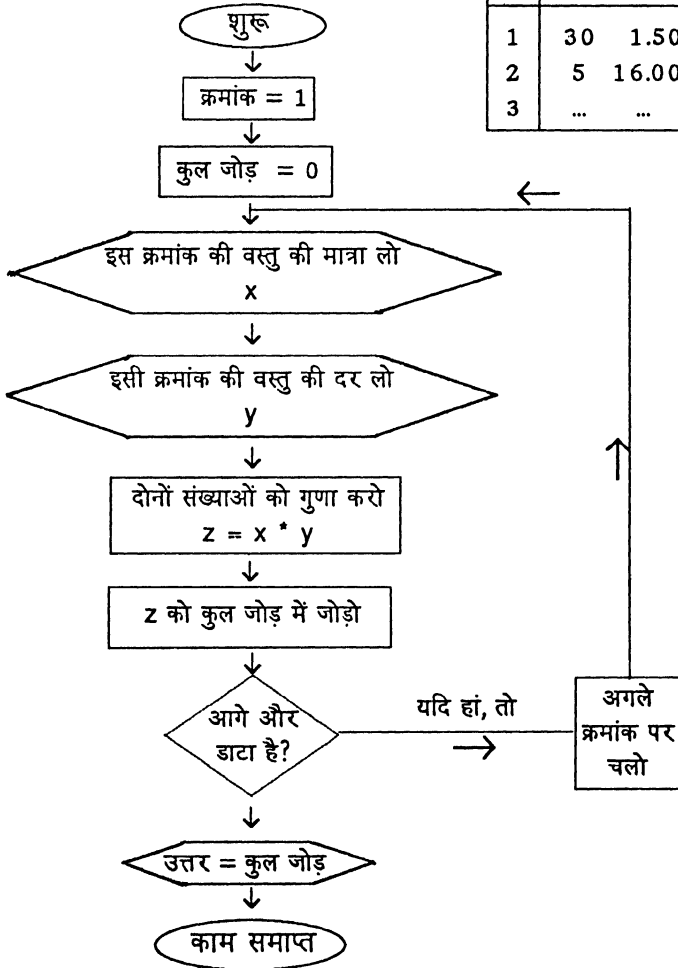
चाहिए छोटी अवधि की स्मृति (short term memory)। कुछ बातें ऐसी हैं जिनको देर तक याद रखना है – इनके लिए चाहिए लम्बी अवधि की स्मृति (long term memory)।

3. हम यह मान कर चल रहे हैं कि हम किसी तरह से प्रोग्राम और डाटा कम्प्यूटर के अंदर पहुंचा देंगे। अतः बाहर से अन्दर भेजने का कोई ज़रिया चाहिए। आमतौर पर टाइपराइटर जैसी चाबियां (key-board) यह काम करती हैं। साथ ही, कम्प्यूटर ने जो उत्तर निकाला वह भी हम तक पहुंचना चाहिए – यानी अन्दर से बाहर भेजने का भी कोई ज़रिया चाहिए। आमतौर पर यह काम टी.वी. के पर्दे जैसा एक पर्दा करता है। अगर यह जानकारी कागज़ पर चाहिए तो एक छापने वाली मशीन (printer) को इस्तेमाल किया जाता है।

4. **भंडारण माध्यम** (storage media): उपरोक्त तीन हिस्सों के बिना कोई कम्प्यूटर चल ही नहीं सकता। परन्तु व्यावहारिक कम्प्यूटरों में भंडारण माध्यमों की भी ज़रूरत होती है। एक तरह के गोदाम जिनमें बहुत सारी चीज़ें भरी जा सकें और अगर ज़रूरत हो तो लम्बे समय तक रखी जा सकें।
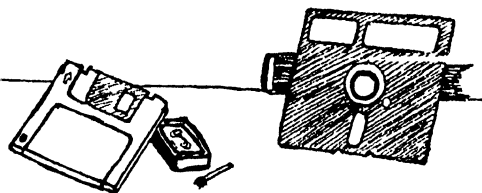
किसी एक प्रोग्राम को अगर हर बार चाबियों के ज़रिए इनपुट (input) करना पड़े तो बहुत समय नष्ट होगा। जैसे घर के खर्चे का हिसाब तो हर महीने एक ही तरह से किया जाता है। सिर्फ बाज़ार दरों और चीज़ों की मात्रा में बदलाव आ सकता है। यानी हर महीने डाटा अलग होता है, पर प्रोग्राम वही। ज़ाहिर है कि इस प्रोग्राम को किसी पक्की कॉपी में लिखना चाहिए – ऐसी कॉपी जिसे कम्प्यूटर खुद पढ़ सके। यही काम है भंडारण माध्यमों का। भंडारण के लिए बहुत से माध्यम उपलब्ध हैं जिनमें सबसे लोकप्रिय है फ्लॉपी डिस्क (floppy)।

एक तो ऐसे भंडारण माध्यम लम्बी अवधि की स्मृति का काम करते हैं। डाटा, प्रोग्राम, ... आदि को इनमें काफी लम्बे समय के लिए स्टोर किया जा सकता है। इनमें बहुत थोड़ी-सी जगह में बहुत सारी सामग्री भरी जा सकती है। 250-300 पन्नों की एक अच्छी-खासी किताब एक फ्लॉपी पर

आ जाएगी और फिर भी उसमें जगह बचेगी।

और दूसरा, इनपुट-आउटपुट के काम भी आते हैं ये भंडारण माध्यम। यानी कि टाईप करने के बजाय कम्प्यूटर इनमें भरा हुआ डाटा, प्रोग्राम आदि पढ़ लेता है और वह भी बहुत ही तेज़ी से। साधारण इनपुट-आउटपुट की प्रक्रिया से यह हज़ारों गुना तेज़ होता है। कम्प्यूटर के विभिन्न अंगों का आपसी सम्बन्ध नीचे के चित्र में दर्शाया गया है। संख्याओं और निर्देशों के आने-जाने के रास्ते तीर से दिखाए गए हैं। आधुनिक छोटे कम्प्यूटरों में CPU और स्मृति एक ही डिब्बे में होते हैं। यही है कम्प्यूटर का शरीर।
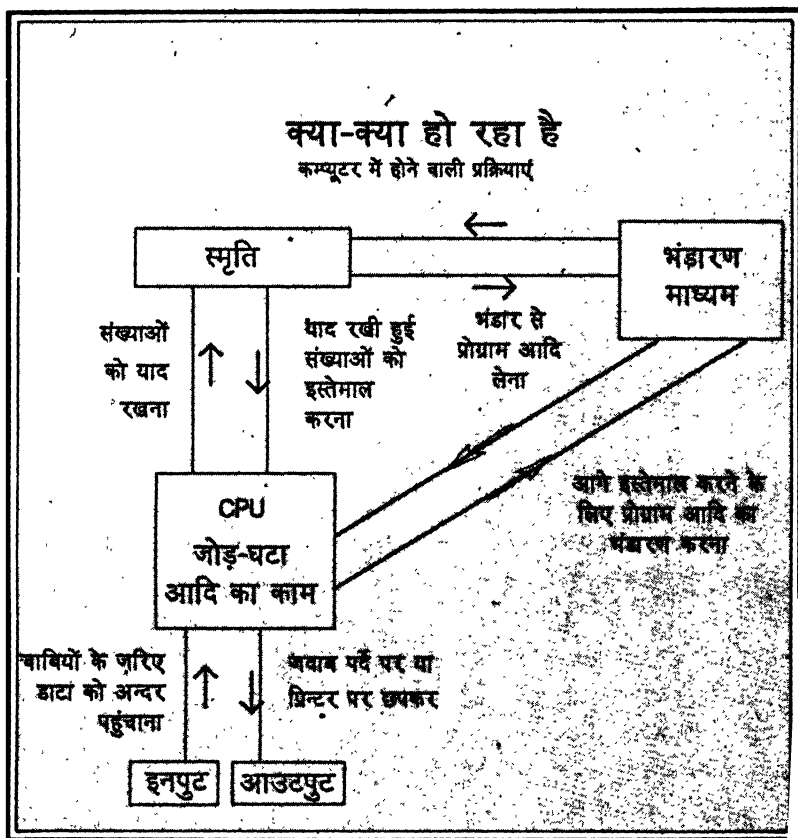
अपना दिमाग - कम्प्यूटर?

कम्प्यूटरों के आने से और कम्प्यूटर-विज्ञान के विकास से हमें अपने दिमाग और उसके अन्दर होने वाली प्रक्रियाओं को देखने का एक नया नज़रिया मिला है। इस दृष्टि से देखें तो मानव-मस्तिष्क एक चमत्कारी कम्प्यूटर है, जिसके मुकाबले का यांत्रिक कम्प्यूटर आज तक नहीं बना है। ठीक है, तेज़ जोड़-घटाने में हम मशीन से मात खा जाते हैं। परन्तु आकृतियों की पहचान, दृश्यों के विश्लेषण आदि में अपना दिमाग कहीं आगे है। हमारे इस अपने कम्प्यूटर के कलपुर्ज़े क्या हैं?

सी.पी.यू. : मस्तिष्क के अन्दर

स्मृति : मस्तिष्क के अन्दर

इनपुट : आंखें, कान, नाक, जीभ, चमड़ी

आउटपुट : मुंह, हाथ, पैर, मांसपेशियां

भंडारण माध्यम : कुछ हद तक तो यह काम दिमाग के अंदर ही हो जाता है। उसके बाद हम बाहर के माध्यम इस्तेमाल करते हैं: बही-खाता, कॉपी....

कम्प्यूटर के विविध उपयोग

कम्प्यूटर किन-किन विविध कामों में इस्तेमाल होते हैं, इसकी बात हमने शुरू में की थी। पर आप कहेंगे यदि कम्प्यूटर केवल जोड़-घटाना, गुणा-भाग करने वाली मशीन है, तो यह चित्र कैसे बनाता है? किताबें छापने में इसका उपयोग कैसे होता है? यह संगीत की रचना कैसे कर सकता है? वास्तव में कम्प्यूटर द्वारा चित्र बनाने के लिए इस पूरे काम को संख्याओं में ढालना होगा। इसी तरह हम टाइपिंग में कम्प्यूटर की

मदद ले सकते हैं क्योंकि इस काम को संख्याओं के रूप में समझा जा सकता है। कम्प्यूटर अपने स्तर पर केवल संख्याओं पर ही काम करता है। इतना ही नहीं वो भी सिर्फ दो संख्याओं (शून्य और एक) में ही सब कुछ ढालकर काम कर सकता है कम्प्यूटर। यह तो प्रोग्रामिंग का कमाल है कि चित्र बनाना या टाइपिंग जैसे काम को हज़ारों या लाखों जोड़-घटाना के सवालों में रूपान्तरित किया गया है। इसमें बहुत से लोगों की कड़ी मेहनत छिपी हुई है।

आजकल तरह-तरह के उपयोगों के लिए पैकेज मिलते हैं। ये वास्तव में प्रोग्राम हैं। इनका फायदा यह है कि प्रोग्रामिंग के कठिन पहलुओं से उपयोग-कर्त्ता का कोई वास्ता नहीं रहता। बल्कि कई तरह के उपयोगों में तो उपयोग-कर्त्ता को प्रोग्रामिंग आने की बिल्कुल भी ज़रूरत नहीं। इनमें प्रमुख है वर्ड-प्रोसेसिंग, जो शायद भारत में कम्प्यूटरों का सबसे बड़ा उपयोग है। भले ही टाइपराइटर पर आप की उंगलियां न चलती हों, पर वर्ड-प्रोसेसिंग आप भी कर सकते हैं। गलती हुई है? सुधार लीजिए। जब कुछ ठीक लगे तब उसे छापिए। साधारण टाइपराइटर से ज़्यादा सजी हुई छपाई मिलेगी। पहले यह सुविधा सिर्फ अंग्रेज़ी में उपलब्ध थी, अब हिन्दी के भी कई पैकेज आए हैं।

सिर्फ टाइपिंग नहीं, उससे एक कदम आगे बढ़कर हैं वे पैकेज जो किताबें छापने में काम आते हैं। ये आम तौर पर पेशेवर प्रकाशक इस्तेमाल करते हैं। इनकी छपाई कैसी होती है? भई, आपके सामने है। जी हां, यह पत्रिका भी कम्प्यूटर पर ही बनी है।

(अमिताभ मुखर्जी दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिक-शास्त्र पढ़ाते हैं।)
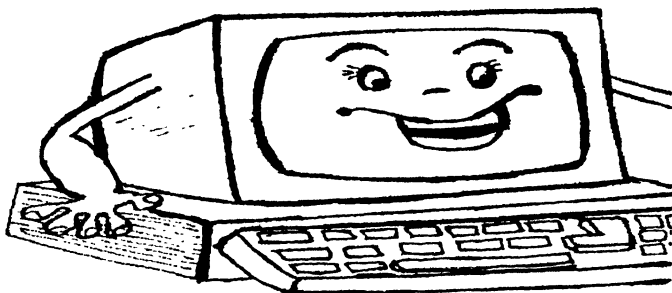
अपने अनुभव लिखने के बारे में

शिक्षक अगर प्रत्येक बच्चे के प्रयासों को बारीकी से देखे और लिखे तो वह शिक्षक के रूप में ज़्यादा प्रभावी बन सकता है।

मेरे 8-9 महीने के पढ़ाने के अनुभव के दौरान एक अभ्यास ने मेरी बहुत मदद की। वह था दिनभर के काम की समीक्षा व अगले दिन की पूर्व तैयारी। दरअसल जहां मैं पढ़ा रही थी वहां कोई भी ऐसा नहीं था जिसके साथ मैं अपने अनुभव बांट सकूं या चर्चा कर सकूं। ऐसे में मैंने अपने अनुभवों को लिखना शुरू किया। यह मेरे लिए एक अमूल्य अनुभव रहा – इसलिए नहीं कि मैंने कुछ लिखा था, पर इसलिए कि मुझे गहराई से सोचने का मौका मिला कि मैंने दिनभर में कक्षा में क्या किया। इसके बाद ही मैं आगे के 2-3 दिन के बारे में ठीक से सोच पाती थी।

जब मैंने लिखना शुरू किया तो रोज़ की कक्षा के बारे में कुछ इस तरह के सवालों के जवाब लिखती – मैंने क्या किया या करने की कोशिश की और बच्चों के साथ इसका क्या अंजाम हुआ? यानी कक्षा में कुल मिलाकर क्या और कैसे हुआ। पर जल्दी ही मुझे लगने लगा कि इन सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण भी कुछ था। आखिर मेरा काम तो बच्चों को सीखने में मदद करना था! तो फिर मेरे लिए बच्चों के सीखने के प्रयासों, उन्होंने क्या सीखा और कितना सीखा, इसकी समीक्षा करना ज़्यादा आवश्यक होना चाहिए। तबसे मैंने इस बात की समीक्षा शुरू की कि हर बच्चे ने क्या किया और कैसे किया। जब मैंने कक्षा प्रक्रिया को इस नज़रिए से देखना शुरू किया तो मुझे सीखते हुए बच्चों का ध्यान से अवलोकन करने की ज़रूरत महसूस होने लगी। जैसे-जैसे मैं

यह अवलोकन करती वैसे-वैसे मेरे लिए और ज़्यादा अवलोकन करने की ज़रूरत भी बढ़ती जाती। बच्चों को इस प्रकार ध्यान से देखने से मुझे कई सूत्र, सुझाव एवं संकेत मिले – बच्चों को क्या सीखना है, उन्हें क्या सिखाना है और उसे सिखाने का सबसे अच्छा तरीका व माहौल क्या है।

इस अनुभव के आधार पर बाद में शिक्षकों के साथ हुई मुलाकातों व संवादों में, मैंने उनके सामने भी बच्चों के बारे में रपट लिखने का प्रस्ताव रखा। एक बार मैंने दो शिक्षकों को अपने काम की समीक्षा इसी प्रकार करने को कहा। मैं इससे पहले तीन महीने से इन शिक्षकों व बच्चों के साथ लगभग लगातार सम्पर्क में थी।

जब दोनों शिक्षकों ने 25 बच्चों पर अपनी रिपोर्ट पढ़ी तो उसे सुनने व समझने में हम सब को पूरा एक दिन लग गया। उन रिपोर्टों में जो सामने आया उससे मैं अत्यंत अभिभूत हो गई। जैसे-जैसे समीक्षा आगे बढ़ी, हर बच्चे का व्यक्तित्व ज़्यादा स्पष्ट रूप से सामने आया और यह व्यक्तित्व बड़े प्यार से खींचा गया प्रतीत होता था। मैंने उस एक दिन में बच्चों के बारे में इतना कुछ जाना और सीखा जितना उससे पहले बच्चों के साथ अपने 4-5 सीधे सम्पर्कों के दौरान नहीं जाना था। मेरे मन में उन शिक्षकों के प्रति इज़्ज़त भी बहुत बढ़ गई।

इस से मेरी यह प्रबल राय बनी है:

(क) हमें शिक्षक की हैसियत से ऐसी रिपोर्ट लिखनी चाहिए जो हमारे काम के लिए उपयोगी हो व उसमें मदद करे। रिपोर्ट औरों के सामने यह सिद्ध करने के लिए न हो कि हम अपना काम ठीक से कर रहे हैं।

(ख) हमारी रिपोर्ट के केन्द्र में बच्चे, प्रत्येक बच्चे का व्यक्तित्व होना चाहिए। न कि यह बात कि हमने क्या किया और क्या नहीं किया। रिपोर्ट व्यक्तित्व-विहीन, बच्चों के झुण्ड के बारे में भी नहीं होनी चाहिए। बच्चों के बारे में सोचते समय यदि हम उन्हें एक झुण्ड की तरह देखें और समझें तो

बच्चों के बारे में सोचते समय यदि हम उन्हें एक झुण्ड की तरह देखें और समझें तो हम वे आवश्यक बातें नहीं पहचान सकते जिनको हमें सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का आधार बनाना चाहिए।

हम वे आवश्यक बातें नहीं पहचान सकते जिनको हमें सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का आधार बनाना चाहिए।

(ग) हम शिक्षकों को बहुत से ऐसे मौकों की ज़रूरत होती है जिनमें हम बच्चों के बारे में अपने अनुभव बांट सकें। हम उस सब के बारे में बातचीत कर सकें जो हम महसूस करते हैं, खासकर तब जब बच्चे सीख रहे होते हैं और हम सीखने में उनकी मदद कर रहे होते हैं। बच्चों के बारे में अनुभव बांटना बच्चों की ठोस एवं गम्भीर समझ बनाने के लिए, अपने आपको शिक्षक के रूप में बेहतर ढंग से समझने के लिए व सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को भी ज़्यादा समझने के लिए बहुत आवश्यक है।

औरों के अनुभव सुनकर, अपने अनुभव औरों के सामने रखकर, और अनुभवों की समानता देखकर कुछ ठोस निष्कर्षों पर भी पहुंचना संभव होता है। यह भी समझ बनती है कि सिखाने की प्रक्रिया एक निरन्तर प्रयोग है, जो कभी तो सफल हो जाता है और कभी नहीं। और प्रयोग का सफल हो जाना भी उतना ही सही है जितना उसका विफल रहना। क्योंकि दोनों परिस्थितियों में बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

इसी तरह सीखते-सीखते हम बेहतर और ज़्यादा बेहतर होते जा सकते हैं। यदि हम अपने अनुभव नियमित रूप से साथ बैठकर न बांट सकें तो हम ऐसे अनुभवों को लिख और पढ़कर तो बांट ही सकते हैं। अनुभवों को बांटने के लिए लिखना, व्यवस्थित करना व एक दूसरे को नियमित रूप से भेज पाना; आमने-सामने हुई बातचीत जितना अच्छा तो नहीं है और मुश्किल भी है पर इसे करना बहुत ज़रूरी है।

बच्चों के बारे में इस तरह के रिपोर्ट लेखन से बच्चा क्या सीखने की कोशिश कर रहा था, किस तरह से कोशिश कर रहा था, आदि प्रश्नों के बारे में मैं सोच पाई और इससे मैंने एक अमूल्य बात सीखी। ऐसी बात जिससे मैं अभी तक ओत-प्रोत हूं। जब मैंने शिक्षक की तरह काम करना शरू किया तब मैं सिर्फ अपने बारे में सजग थी कि मैंने कक्षा में क्या किया, कक्षा के बाहर क्या किया, तैयारी कैसे की। पर अब मैं ज़्यादा और ज़्यादा सचेत होती जा रही हूं – बच्चे की अहम् भूमिका के बारे में। आखिर सीखने वाला तो बच्चा ही है और उसकी भूमिका सबसे अहम् है।

उषा राव

(कर्नाटक के कुछ गांवों में चले एक शैक्षणिक प्रयोग की कार्यकर्त्ता।)
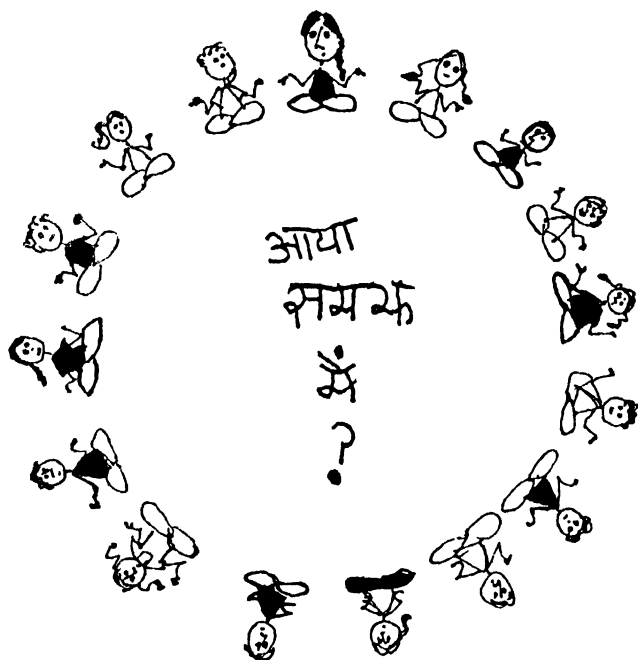
हमने पढ़ाया और बच्चों ने पढ़ा। क्या बच्चों ने वही समझा जो हम उन्हें समझाना चाह रहे थे?

कुछ ऐसी बातें हैं जिन पर सब हामी भरते हैं। लेकिन उन पर अमल हो पा रहा है या नहीं – यह निश्चित करने की हमारी निष्ठा बड़ी कमज़ोर बनी रहती है।

ऐसी ही एक बात है कि बच्चों की उम्र और उनकी समझने की क्षमता के अनुसार पाठ्यक्रम व पाठ्य-पुस्तक बनर्नी चाहिए।

इस बात को अमल में लाने के लिए यह निहायत ज़रूरी है कि हम पता लगा सकें कि बच्चों को क्या समझ आ रहा है? कक्षा में पाठ पढ़ाते समय हम बच्चों से पूछते हैं, "क्यों भई, आया समझ में?" और एक सामूहिक गूंज उठती है "जी सर"! कभी हिसाब रख कर देखना चाहिए कि हमने कितनी बार बच्चे

से यह पूछा और कितनी बार उन्होंने 'जी' में उत्तर दिया और आखिर कितनी बार ऐसा हुआ कि कुछ बच्चे बोले, "नहीं सर, समझ में नहीं आया।"

परीक्षा का जो नाटक हो चला है तो अब परीक्षा से भी यह जांचना आसान नहीं है कि बच्चे दरअसल क्या समझ रहे हैं। पर बच्चों के साथ दोस्ती भरे, सहज और अनौपचारिक माहौल में बातें करने से हम ज़रूर उनके मन को कुछ बेहतर समझ सकते हैं। चलिए ऐसी कुछ बातचीतों के उदाहरण पढ़ें।

दिन, रात और ऋतुएं

यहां हम जो बातचीत प्रस्तुत कर रहे हैं वह होशंगाबाद (म.प्र.) के पास के एक गांव के स्कूल में हुई थी। हम भूगोल के पाठ्यक्रम के कुछ बड़े महत्वपूर्ण विषयों पर एक सर्वेक्षण कर रहे थे। विषय थे – दिन-रात का होना, पृथ्वी पर ऋतु परिवर्तन, अक्षांश-देशांश रेखाएं, पृथ्वी की गतियां। हमने 6वीं व 10वीं कक्षा के बच्चों को एक लिखित प्रश्न-पत्र दिया हल करने के लिए। दो दिन बाद हम उन्हीं बच्चों के साथ बैठे और यह बातचीत की।

कक्षा 6वीं के बच्चों के साथ बातचीत

हम बाहर जाकर खुले में बैठे। एक गोल घेरा बना कर हमने कुछ गपशप की, हंसी मज़ाक हुआ। फिर हमने पूछा:

"अच्छा, यह बताओ कि दिन होता है फिर रात हो जाती है। फिर से दिन होता है। ऐसा क्यों?"

"जब चांद पृथ्वी और सूरज के बीच आ जाता है ना, तब चांद की छाया पृथ्वी पर पड़ती है, तो रात हो जाती है।"
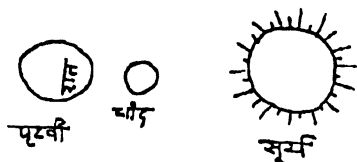
"अच्छा, अभी तो दिन है, तो अभी क्या हो रहा है?"

"अभी सूरज और चांद के बीच में पृथ्वी है, इसलिए अभी दिन है।"
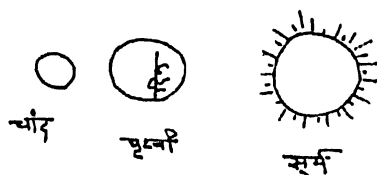
"हूं, अच्छा... अच्छा! खैर चलो यह बताओ कि ऋतुएं क्यों बदलती हैं? कभी गर्मी होती है, कभी ठंड, कभी बरसात। ऐसा क्यों होता है?"

"जब पृथ्वी सूरज के पास आ जाती है तब गर्मी पड़ती है, और जब सूरज से दूर चली जाती है तब सर्दी होती है।"

"और ना जब पृथ्वी बीच में होती है, मतलब जब सूरज से बहुत दूर भी नहीं होती और बहुत पास भी नहीं होती तब बारिश होती है।"

"अच्छा! ऐसा क्यों?"

"पानी, भाप बन के समुद्रों से ऊपर उठ जाता है। ऊपर हवा से भाप फैल जाती है और बारिश हो जाती है...."

"नहीं तो... ऐसा थोड़ी ना होता है! बारिश तो तब होती है जब पृथ्वी पर बहुत गर्मी पड़ती है। तभी तो पानी भाप बन के उड़ता है और बारिश होती है। ये तो तभी होगा जब पृथ्वी सूरज के पास होगी।"

"हूं! तुम यह बताओ कि बारिश किस महीने में होती है?"

"जून, जुलाई में, अगस्त में।"

"अच्छा, और गर्मी कब पड़ती है?"

"जुलाई से पहले।"

"जुलाई के बाद क्या होता है?"

"कुछ समय तक बारिश होती रहती है, फिर नवंबर-दिसंबर में सर्दी हो जाती है।"

"तो अभी तुम्हीं तो बता रहे थे कि गर्मियों के बाद बारिश होती है, न कि गर्मी के महीनों में। चलो छोड़ो, अब फिर से इस बात पर आएं कि पृथ्वी सूर्य के पास होती है तो क्या होता है?"

"ये सबकुछ समझ में नहीं आता है। मुझे तो... पता नहीं क्या होता है।"

"अच्छा, कोई बात नहीं, चलो देखते हैं। तुम में से कोई एक बीच में आ के खड़ा हो जाए। चलो, तुम बन जाओ सूरज।"

"अब एक और जना खड़ा हो के पृथ्वी बन जाए और सूरज के चारों ओर पृथ्वी की तरह घूम कर बताए ज़रा।"

एक लड़का उठा और अपने चारों ओर घूमते हुए उसने सूरज बने लड़के का चक्कर काट कर दिखाया।

"वाह! बहुत ठीक। अच्छा, अब सोचा कि गर्मी-सर्दी क्यों होती है?"

बच्चों ने फिर वही बात दोहराई कि जब पृथ्वी सूरज के पास होती है तो गर्मी और दूर होती है तो सर्दी होती है।

यह साफ था कि इन बच्चों के मन में पृथ्वी के अपने अक्ष पर झुके होने की अवधारणा बिल्कुल नहीं बनी थी। पृथ्वी का यह झुकाव और उसका गोलाकार रूप ही तो गर्मी-सर्दी की प्रक्रिया के लिए ज़िम्मेदार हैं। पर इस बात के महत्व का ज़रा भी आभास बच्चों के मन में नहीं बना था। देखना चाहिए कि उनके पाठ में इस बात के महत्व को सही ढंग से उभारा गया है कि नहीं।
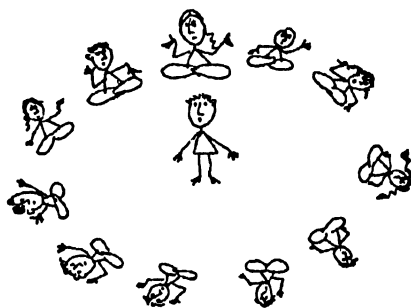
बहरहाल हमें लगा कि कम-से-कम पृथ्वी के अपने चारों ओर घूमते हुए सूर्य का चक्कर लगाने की छवि ठीक बन रही है। तो देखें कि क्या अब वे दिन-रात की बात को समझ सकते हैं?

"दिन-रात क्यों होते हैं फिर से समझाओ हमें। दो बच्चे खड़े हो कर सूरज और पृथ्वी बन जाएं और अब दिन-रात की बात करके दिखाएं, ठीक?"

एक लड़का उठा और कहने लगा तीन लोगों की ज़रूरत पड़ेगी, दो से नहीं होगा।

"तीसरा लड़का क्यों?"

"जी, चांद बनने के लिए।"

इस तरह तीन लड़के खड़े हुए – चांद, पृथ्वी, सूरज।
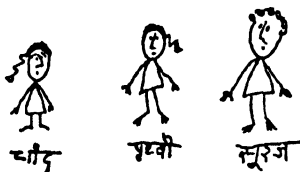
"... पृथ्वी का जो हिस्सा सूरज की तरफ है न, वहां दिन है और जो हिस्सा चांद की तरफ है वहां रात है।"

पर तभी दूसरे बच्चे ने फिर वही पुरानी बात सामने रखी।

"नहीं, जब चांद, पृथ्वी और सूरज के बीच आ जाता है तब चांद की छाया पड़ती है पृथ्वी पर, तब रात हो जाती है। जब चांद वहां से हट जाता है... तब सूरज की रोशनी पृथ्वी पर पड़ती है तो दिन होता है।"

इतने में एक और बच्चा बोल उठा, "तब ग्रहण हो जाता है... ग्रहण होता है जब सूरज और पृथ्वी के बीच चांद आ जाता है न, तब।"

"हूं, ग्रहण - यह क्या होता है?"

"जब चांद काला हो जाता है तो उसे ग्रहण कहते हैं।"

"अच्छा छोड़ो ग्रहण की बात तो बाद में कभी करेंगे। पहले यह बताओ कि दिन-रात के बारे में किस बात को ठीक मानें?"

बच्चे कुछ बुदबुदाने लगे धीमे-धीमे से। वे कह रहे थे बड़ी झिझक के साथ, "दोनों बातों में थोड़ा कुछ ठीक है। पर दोनों बातें पूरी-पूरी सही नहीं हैं..."

फिर किसी ने सोच कर अपनी तरफ से आगे कहने की कोशिश की।

"पृथ्वी अपनी जगह खड़ी रहती है... तब जिस तरफ सूरज की रोशनी पड़ रही है वहां दिन है, फिर पृथ्वी पलट जाती है तो उस तरफ रात हो जाती है।"

तभी एक और छात्र बोल उठा, "जब सूरज की रोशनी पृथ्वी पर पड़ती है ना तब वहां दिन है। फिर पृथ्वी घूम जाती है तब ग्रहण हो जाता है।"*

यहां तक की बातचीत के बाद हम खुद थोड़े हैरान व परेशान होने लगे थे। समझ में नहीं आ रहा था कि किस-किस गुत्थी को सुलझाना शुरू करें और कहां से शुरुआत करें। यह साफ था कि दिन-रात और चन्द्रग्रहण के बीच बच्चे गड्ड-मड्ड हुए पड़े थे। यह भी स्पष्ट था कि पृथ्वी की दैनिक गति की छवि भी उनके मन में पूरी तरह

* ध्यान दें कि दिन-रात की बात में तो भ्रम था ही, ग्रहण की बात भी बच्चों को समझ नहीं आई थी। चांद पर ग्रहण तो तब होता है जब पृथ्वी चांद और सूरज के बीच आ जाती है और पृथ्वी की छाया चांद पर पड़ती है।

विकसित नहीं थी। जैसे उन्हें इस बात की कल्पना नहीं थी कि पृथ्वी का अपनी धुरी पर घूमना 24 घंटे में हर पल होता रहता है।

हमारे हाथ में एक किताब थी जो हम साथ स्कूल ले गए थे। उस किताब में दिन-रात की प्रक्रिया को समझाने के लिए दो चित्र बने थे। हमने सोचा बच्चों का ध्यान बांटने की ज़रूरत है। वे सोच में डूब कर उलझन महसूस कर रहे हैं। तो हमने उन्हें किताब से ये चित्र दिखाए:

"इस चित्र में क्या बताया जा रहा है, देख कर बताओ।"

दिलचस्प बात यह है कि बच्चों ने तुरन्त बल्ब को सूरज माना, और ग्लोब को पृथ्वी समझा। यहां तक कि मक्खी पर पहले दिन है फिर पृथ्वी घूम गई है और मक्खी पर रात है, यह भी वे समझा सके।
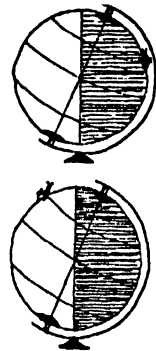
थोड़ी-थोड़ी सफलता, संतोष और आशा के एहसास के साथ हमने बातचीत का यह दौर खत्म कर दिया।

रश्मि पालीवाल व यमुना सनी

(एकलव्य में सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम से जुड़ी हैं।)

इस बातचीत को पढ़कर आपके मन में क्या निष्कर्ष उभरते हैं? सोचिए, और हमें लिखिए भी। अगले अंक में दसवीं कक्षा के बच्चों के साथ बातचीत प्रस्तुत करेंगे।

आप भी सोचिए
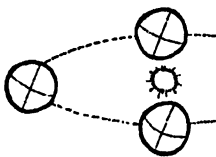
आमतौर पर पाठ्यपुस्तकों में पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा करने का चित्र कुछ इस तरह बनाया होता है। और साथ ही यह भी लिखा होता है कि जब पृथ्वी सूर्य के पास होती है तो गर्मी का मौसम होता है और जब सूर्य से दूर – तो सर्दी का मौसम।

इन दोनों बातों को ध्यान से देखने, पढ़ने के बाद आपको कुछ गड़बड़ नज़र आई ? अपने विचार हमें लिखिए ताकि इस महत्वपूर्ण अवधारणा पर चर्चा आगे बढ़ सके।

मुझे डर लगता है गणित से

गंगा गुप्ता

हमारी गणित की पूरी क्षमता स्मृति पर टिकी रहती है। याद की गई विधियां भूलने पर गणित से खौफ खाना स्वाभाविक है, है न!

गणित का नाम सुनते ही पता नहीं क्यों मेरे हाथ-पैर फूलने लगते हैं। वैसे कक्षा की दृष्टि से मैं कभी भी गणित विषय में कमज़ोर नहीं रही हूं। मेरे सवाल हमेशा ही कक्षा में सबसे पहले हो जाया करते थे। हमेशा मुझे शाबाशी मिलती। सब साथी मेरी नकल करके उत्तर लिखते थे और गुरुजी को दिखाने से पहले उत्तर मुझसे मिला लेते थे। अब जाने क्या हो गया है वे सवाल जो फटाफट निकलते थे, अब मुझसे नहीं बनते। मैं अक्सर सोचती हूं कि ऐसा क्यों है।

इसका एक कारण तो मुझे यह लगता है कि उस समय मुझे वो प्रक्रिया याद थी। शायद समझ नहीं आई थी पर उसके सारे स्टेप (कदम) यांत्रिक रूप से मैं कर सकती थी। सवाल मिला नहीं कि धड़ाधड़ एक के बाद एक स्टेप कर दिए और उत्तर निकाल दिया। और फिर सवाल करने के उस तरीके को समझना इसलिए भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि दो-चार महीने के बाद यदि उसकी एकाध स्टेप भी भूल जाओ तो फिर पूरा सवाल ही नहीं बनता। आठवीं बोर्ड में मुझे गणित में 79% अंक मिले। तब गणित के अंक देखकर मुझे सभी ने कहा कि तुम्हें गणित विषय लेना चाहिए। परन्तु मेरे अंदर आत्मविश्वास की कमी ने ही मुझे पीछे धकेल दिया। अब हालत यह है कि आठवीं तक भी मैंने जो कुछ सीखा था

जब मैं छोटी थी तो इस बात से उलझी रहती थी कि दस और एक ग्यारह या एक पर एक ग्यारह पढ़ाते हैं, इसका अर्थ क्या होता है।

वह भी काफी गड्ड-मड्ड हो गया है। वैसे भी वो कभी साफ था ही नहीं और उसकी मूल बातें तो मेरी समझ में कभी नहीं आईं। वैसे जब मैं छोटी थी तो इस बात से बहुत उलझी रहती थी कि दस और एक ग्यारह या एक पर एक ग्यारह पढ़ाते हैं, इसका मतलब क्या होता है।

स्कूल की नौकरी मिलने के बाद पढ़ाना शुरू कर दिया। वहां पर साथियों से इन सवालों के बारे में पूछा तो भी कुछ स्पष्ट उत्तर नहीं मिला। कुल मिलाकर बात समझ नहीं आई। फिर 1987 में एकलव्य के 'प्राथमिक शिक्षा में नवाचार' के काम से जुड़ी। जब इस कार्यक्रम में स्थानीय मान की मूल अवधारणा के बारे में चर्चा हुई तब कुछ-कुछ स्पष्टता मिली। साथ ही जब मैंने बच्चों को इकाई-दहाई समझाने की कोशिश की तब ठीक से ख्याल आया कि इकाई, दहाई और स्थानीय मान में क्या संबंध है।

मुझे अभी तक गुणज और गुणनखंड में भ्रम होता है। गुणज यानी क्या और गुणनखंड यानी क्या? जब हम कहते हैं कि 15 के गुणनखंड हैं 3 और 5 – तो इसमें 15 गुणज है का क्या मतलब? और 3 व 5 गुणनखंड कैसे हो गए? पर मैं गुणनखंड फटाफट निकाल लेती थी और अभी भी निकाल सकती हूं। इस सबको मैं बार-बार समझने की कोशिश करती हूं। पर बार-बार समझने पर भी कोई फायदा नहीं होता है। यदि कोई अचानक गुणज पूछ ले तो अभी भी अटपटा जाती हूं। इसी प्रकार लघुत्तम-महत्तम निकालने का यांत्रिक तरीका:

5	35	30	15
3	7	6	3
7	7	2	1
2	1	2	1
	x	x	x

5 x 3 x 7 x 2 = 230

अब ये क्या होता है, और इससे क्या पता चलता है?

मुझे मालूम नहीं कि इस तरह की चीज़ें पांचवीं कक्षा तक या आगे क्यों आवश्यक हैं? मुझे तो आज तक समझ नहीं आता कि इसकी मूल अवधारणा क्या है? इसे मैंने अलग-अलग लोगों से समझने की भी कोशिश की है पर बहुत प्रयत्न करने पर भी समझ में नहीं आता। एक मानसिक जड़ता है इसके बारे में सोचने में, जैसे कोई दीवार खड़ी हो जिसे तोड़ा न जा सके और न ही उसके पार जाया जा सके।

इसी प्रकार साधारण जोड़-घटाना के मौखिक सवाल तो थोड़े-बहुत बन जाते हैं पर वे भी जल्दी और पूरे आत्मविश्वास के साथ नहीं। सारे पहाड़े जो मुझे याद थे जाने अब कहां चले गए? सच, सोच कर शर्म आती है कि मुझे गणित में विशेष योग्यता मिलती थी। अगर अभी भी कहा जाए कि 2 को 3 बार और 3 को 3 बार प्रयोग करके (यानि +, −, x और घात की क्रियाएं उपयोग करके) 24 लाओ तो काफी दिमाग लगाने पर भी मुझसे नहीं बनता। आठवीं में समीकरण के सवाल (पिता की आयु X है तो पुत्र की क्या होगी) मैं बहुत ही आसानी से कर लेती थी। और तब मज़ा भी आता था। मेरे शिक्षक भी बहुत खुश होते थे। पर अब उसका एक भी स्टेप पता नहीं है। मुझे लगता है कि गणित में जब तक मुझे प्रक्रिया याद थी तब तक तो करने में मज़ा आता था पर एकाध स्टेप भूलने पर कुछ समझ नहीं आता। अभ्यास छूटने के साथ-साथ ये सब भूलता जाता है और एक-दूसरे में गड्ड-मड्ड होता जाता है। यानी गुणज का स्टेप वर्गमूल में घुसा और वर्गमूल का गुणनखंड में। वैसे भ्रम में डालने के लिए और गड्ड-मड्ड होने के लिए और भी बहुत सारे कलन हैं, जिनमें बहुत सारे स्टेप होते हैं।

चूंकि न तो गुणनखंड की समझ है और न ही वर्गमूल की और न उस प्रक्रिया की जिससे इन्हें निकाला जाता
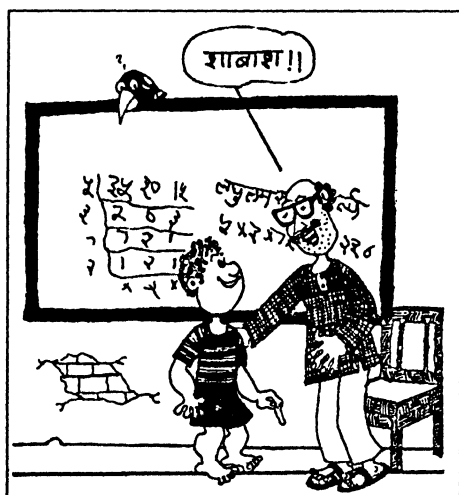
है तो बस गणित की पूरी क्षमता याददाश्त पर टिकी रहती है।

इसी प्रकार भिन्न के जोड़-घटाना, गुणा, भाग के सवाल भी हैं। मैं दावे से कह सकती हूं कि भिन्न के जोड़, घटा, बड़ी-छोटी संख्याएं ढूंढने, क्रम में जमाने के सवाल जो लोग कर पाते हैं उनमें से 50% से भी ज्यादा केवल यांत्रिक ढंग से सूत्रों का उपयोग करके हल करते हैं उन्हें। न वे खुद समझते हैं कि वे क्या कर रहे हैं और ज़ाहिर है कि न वे समझा सकते हैं कि सवाल कैसे हल किया या हल करने का तरीका कैसे समझा जा सकता है।

$$\frac{3}{5} + \frac{2}{3}$$

$$\frac{9+10}{15} = \frac{19}{15}$$

या 9/15 और 10/15 निकाल कर पता करना कि 2/3 बड़ी है।

अब इसमें 9/15 कैसे आ गया? 9/15 और 3/5 में क्या संबंध है? लघुत्तम क्यों निकाला? ये सब उन्हें कुछ समझ नहीं आता। बस सवाल मिला और फट से हल कर दिया। और मेरी तरह कहीं भूल गए, तो बैठे हैं कि अब क्या करें? मैंने इसे बहुत समझने की कोशिश की पर किसी ने समझाया ही नहीं। सबकी कोशिश यही थी कि किसी तरह सवाल हल करने का तरीका याद कर लूं (उनके शब्दों में सीख जाऊं)। कलनों को व तरीकों को समझने की तो कोई प्रथा ही नहीं है।

जब मैं पढ़ाने लगी और हमारी नवाचार की किताबों व पाठ्यक्रम में छात्रों से समझने की अपेक्षा दिखने लगी तो मैं घबराई। जो मुझे समझ नहीं आता, वो सब बच्चों को कैसे समझाऊं! कलन तो उन्हें याद करवा दूं, किताब में दिए सब सवाल हल करवा दूं, रटवा दूं – पर समझाऊं कैसे? और हम शिक्षकों ने ही तो तय किया था कि इस नए कार्यक्रम में छात्रों के मूल्यांकन में किताब का कोई प्रश्न नहीं होगा। अब नई इबारत, नई संख्याओं के सवाल हल करने के लिए तो प्रक्रिया व प्रश्न की समझ चाहिए। वह समझ कहां से आए?

इतने साल बाद अब मुझे भिन्न की अवधारणा चित्रों के माध्यम से समझ में आने लगी है। इसलिए अब ये भिन्न के सवाल वास्तव में खेल जैसे लगने लगे और मैंने कक्षा में पूरे आत्मविश्वास के साथ बच्चों के साथ उन्हें किया। और बच्चे भी इन्हें आसानी से कर पाते हैं – जैसे यदि 3/5 और 2/3 में मुझे बड़ी भिन्न, छोटी भिन्न समझना है तो सबसे पहले मैंने उन दोनों भिन्न संख्याओं के चित्र बनाए–
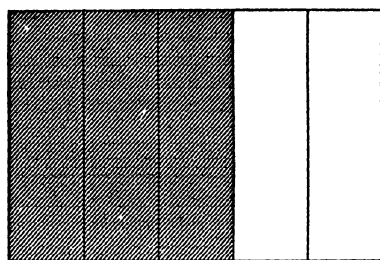
3/5
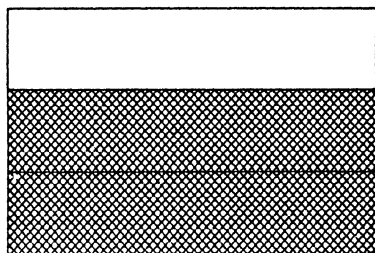
2/3

पहले चित्र में कुल 5 भाग हैं और दूसरे में कुल 3 भाग। जब इन दोनों को इकट्ठा करके एक ही चित्र में बनाया तो हमारे पास कुल 15 भाग हो गए।
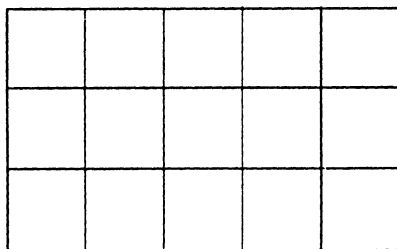
अब इन 15 भागों में से हमने पहले चित्र के भाग उसे दे दिए। ऐसे ही दूसरे चित्र को भी उसके भाग दे दिए।
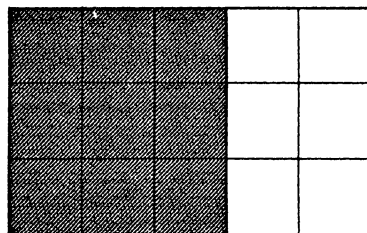
9/15
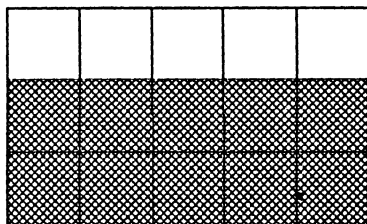
10/15

इन चित्रों को देखते ही समझ में आ जाता है कि 9/15 और 10/15 कहां से आए।

अब आसानी से बता सकते हैं कि जिसके खाने ज़्यादा रंगे वो भिन्न बड़ा है। यानी 10/15 या 2/3 बड़ा है। और जोड़ के लिए भी हम उसके दोनों कुल रंगे भाग आसानी से जोड़ सकते हैं। अब मुझे लगता है कि पहले भिन्न की अवधारणा समझ कर, बाद में उसके यांत्रिक स्टेप (कदम) सीखें तो शायद वो उतना डरावना नहीं लगेगा। ऐसे ही गणित के अन्य पहलुओं को भी समझने की ज़रूरत होगी।

पर सवाल सिर्फ प्राथमिक शिक्षा या जोड़, गुणा, भाग, भिन्न पर थोड़े ही रुकता है। मैंने अर्थशास्त्र में एम.ए. किया है, और बी.ए. प्रथम वर्ष से एम.ए. अंतिम वर्ष तक हमेशा सांख्यिकी के सवाल ठीक करके आई हूं। पर अभी मुझसे कोई पूछे कि मध्यक या प्रमाण विचलन क्या है? इसे कैसे निकालते हैं? क्या किया था? कुछ भी मालूम नहीं। यह सवाल तो भूल ही जाओ कि इसे क्यों निकालते हैं और इसका क्या उपयोग है? मुझे रेखागणित में भी केवल आकृतियां बनाना और उनके नाम देना व उनसे खेलना अच्छा लगता है। पर त्रिज्या, परिधि, शंकु, बेलन आदि के बारे में ऊट-पटांग सवाल करना, उनके सूत्र याद करना, बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। प्रमेय में अ, ब, स को लेकर क्या करना है? क्यों अ ब स लेते हैं? क्या सिद्ध करना है? क्यों करना है? कुछ पता नहीं चलता। फिर सिद्ध करने के लिए ये अ, ब, स से पता नहीं क्या-क्या करना होता है। बहुत बुरा लगता है। आठवीं में मुझे याद है कि कैसे हमने महत्वपूर्ण प्रमेयों को रट-रटकर समझा था और परीक्षा में ज्यों का त्यों आने पर कितने खुश हुए थे। मेरे साथ एक बात शायद अच्छी हुई है कि मेरी खुद की गणित में विशेष

समझ और ज्ञान न होने से, मेरे स्कूल के बच्चे गणित में अच्छे रहे हैं। और मुझसे ज्यादा आगे कर पाए हैं, क्योंकि गणित सीखने में जो दिक्कत या कठिनाई आती है उसका अहसास होने के कारण मैंने बच्चों की दिक्कतों को समझा। सीधे सही उत्तर की अपेक्षा नहीं की। जिससे शायद उन्हें और मुझे सीखने में मदद मिली। मेरे स्कूल के कुछ बच्चे तो बहुत-सी नई बातें खुद करने लगे हैं और कई बार तो मैं पांचवीं के बच्चों से समझती हूं कि इस में क्या-क्या करना है। जैसे मैंने लिखा कि 2, 3 और +, –, x का प्रयोग करके 18 बनाओ। मेरे कुछ बच्चे आसानी से ढूंढ लेते हैं। इतना ही नहीं इस प्रकार की कुछ और भी संख्याएं लेकर वे नए-नए सवाल बनाते हैं और मुझे भी सिखाते हैं!

ऐसा कैसे हो कि गणित थोड़ा समय अच्छा लगने की बजाए हमेशा अच्छा लगे और जो सवाल, जो बातें सीखते समय या परीक्षा के समय ही याद रहती हैं और हल की जा सकती हैं, वे सब पांच साल बाद भी अच्छी लगें। जब तक मुझे यह समझ नहीं आएगा, मालूम नहीं होगा स्वाभाविक है कि मैं गणित से भागती रहूंगी व डरती रहूंगी।

(गंगा गुप्ता प्राथमिक शाला, पाठई, ज़िला बैतूल में पढ़ाती हैं। प्राथमिक शिक्षा के नवाचार कार्यक्रमों में सक्रिय।)

● ● ●

समझदार बगुले

गाय-भैंस की पीठ पर बैठकर कौओं को छोटे-छोटे कीड़ों -मकोड़ों को खाते हुए आपने अक्सर देखा होगा। जानवरों की त्वचा पर ही नहीं घास में भी असंख्य छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े छिपे होते हैं जो सरसरी तौर पर आंखों से दिखाई नहीं देते और अपने दुश्मनों की नज़रों से बचे रहते हैं। लेकिन ये कीड़े-मकोड़े कभी-न-कभी तो नजर आएंगे ही न?

अब देखिए एक हाथी आराम से चला जा रहा है और पीछे-पीछे बगुले दावत उड़ाते हुए चले जा रहे हैं। बुबुलकस-एबिस नामक बगुलों ने इस बात को अच्छी तरह से समझ लिया है कि हाथी घास पर जहां-जहां भारी-भरकम कदम रखेगा वहां घास के हिलने पर कीड़े-मकोड़े इधर-उधर भागते हैं। तो देर किस बात की? हाथी के पीछे-पीछे चलते रहो और शानदार दावत का इंतजाम पक्का!

चलती का नाम मोटर

बिजली बही, चुम्बकीय क्षेत्र पैदा हुआ और मोटर चली। इस कठिन से सिद्धांत को इस मॉडल ने बनाया आसान।

अपनी स्कूल या कॉलेज की पढ़ाई के दौरान कहीं-न-कहीं तो हम सबने पढ़ा होता है कि विद्युत-परिपथ को लगातार बन्द-चालू, चालू-बन्द करके चुम्बकीय क्षेत्र पैदा किया जा सकता है; और चुम्बकीय क्षेत्र को तेज़ी से कम-ज्यादा, ज्यादा-कम करके या बदलकर बिजली पैदा की जा सकती है। परन्तु शायद ही कोई स्पष्ट समझ बनती होगी कि यह सब होता कैसे है। मन में एक धारणा-सी बन जाती है कि काफी मुश्किल होता होगा इस तरह से चुम्बकीय क्षेत्र पैदा करना या बिजली बनाना।

जबकि अपने आस-पास ही पंखे में, टेप-रिकार्डर में, घर में बजने वाली घंटी आदि में बदलते हुए विद्युत क्षेत्र से चुम्बकीय क्षेत्र बनाने के कारण ही मोटर चलती है, घंटी बजती है....

सवाल उठता है कि क्या हम खुद कोई ऐसी मोटर बना सकते हैं या क्या कोई इतना आसान तरीका हो सकता है जिससे हम ही नहीं विद्यार्थी भी अपने हाथों से कुछ बना पाएं और इन जटिल लगने वाले सिद्धान्तों को अपने सामने व्यावहारिक उपयोग में आता देख सकें, उन्हें समझने की कोशिश कर सकें। चलिए, कोशिश करते हैं।

मुख्य सवाल है कि हमें कोई ऐसा तरीका सोचना होगा जिसमें विद्युत परिपथ लगातार बनता-टूटता रहे और उसके कारण बन रहे चुम्बकीय क्षेत्र का फायदा उठाकर मोटर चलाने की कोशिश करें। यहां पर ऐसा करने का एक तरीका दिया जा रहा है पर और भी बहुत से तरीके सोचे जा सकते हैं ऐसी व्यवस्था बनाने के।

इसके लिए हमें इन सब चीज़ों की ज़रूरत होगी

1. तकरीबन एक मीटर लम्बा 24 गेज का मोटर रिवांइडिंग में इस्तेमाल होने वाला तांबे का तार। यह आमतौर पर बिजली की दुकान पर मिल जाता है। इस पर प्लास्टिक नहीं चढ़ा होता, सिर्फ कुचालक पेंट (एनेमल) चढ़ाया होता है।
2. टॉर्च में डलने वाला सेल
3. चुम्बक – चकती चुम्बक या छड़ चुम्बक
4. ब्लेड या रेगमाल कागज़
5. स्टोव-पिन
6. साइकल ट्यूब के छल्ले
7. कील
8. धागा
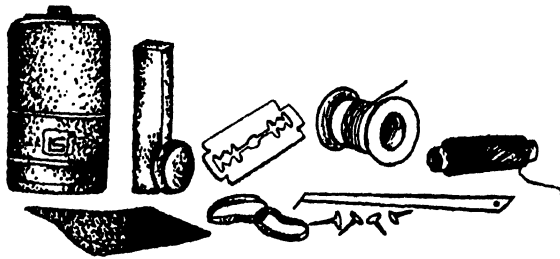
तरीका

* सबसे पहले तार को सेल पर 10-15 बार गोल-गोल लपेटकर एक छल्ला-सा बना लो।
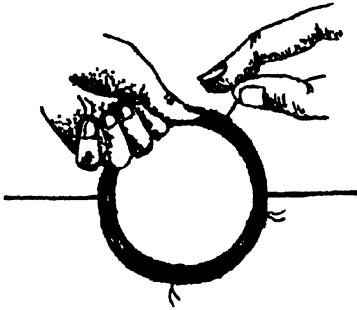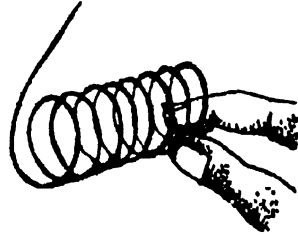
* सेल से उतारने पर छल्ला खुल नहीं जाए इसलिए उसे दो-चार जगह कसकर धागे से बांधना अच्छा रहेगा। तार के दोनों खुले सिरों से लपेटे देकर भी छल्ले को कसा जा सकता है या फिर टेप चिपकाई जा सकती है।

* इस प्रयोग अर्थात मोटर का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा यही छल्ला है इसलिए इसे बनाने पर सबसे ज़्यादा ध्यान देना होगा। छल्ले के दोनों छोर केन्द्र से गुज़रने वाली रेखा की बिल्कुल सीध में होने चाहिए।
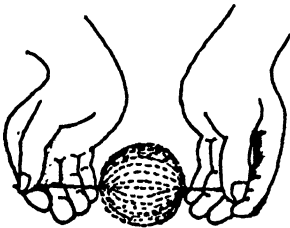
* अगर छल्ला इस धुरी पर अच्छी तरह से संतुलित होगा तभी वह ठीक से, स्वतंत्रता से घूम पाएगा। उसका संतुलन परखने के लिए चित्र के मुताबिक छल्ले को दो उंगलियों पर रखकर घुमाकर देख सकते हैं।

अगर आसानी से घूमने लगे और काफी देर तक घूमता रहे तो एकदम सही छल्ला तैयार हो गया है। अगर किसी एक तरफ वजन ज्यादा हो गया हो तो एकदम समझ में आ जाएगा कि छल्ला ठीक से नहीं घूम रहा है और झटके खा कर तुरन्त रुक जाता है।

* अब इस छल्ले के दोनों सिरों के सिर्फ ऊपरी आधे हिस्से पर चढ़े कुचालक पेंट (एनेमल) को खुरचकर हटाना होगा। यह काम भी ध्यान से
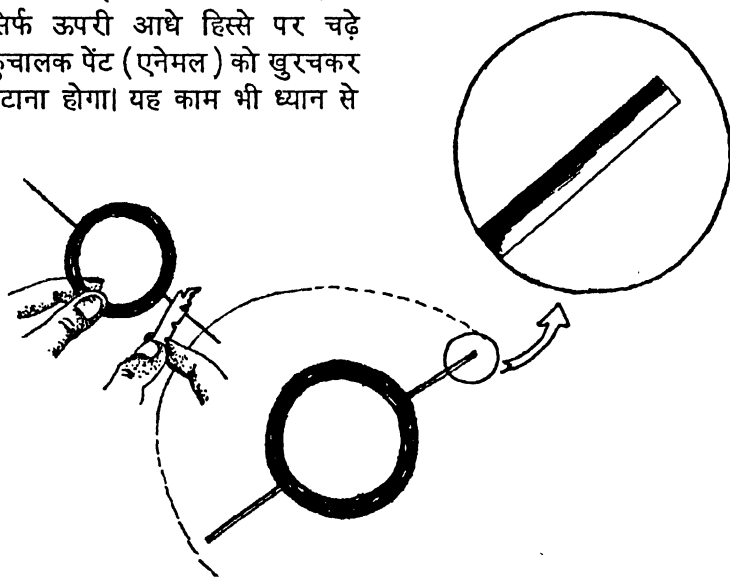
करना होगा। पूरा पेंट नहीं उतारना है, चित्र-5 में दिखाए मुताबिक दोनों तारों को सिर्फ एक तरफ से घिसना है। पूरा पेंट उतरने पर मोटर नहीं चलेगी। ऐसा करने से इस छल्ले के दोनों सिरों के आधे हिस्से पर तांबा और आधे हिस्से पर कुचालक पेंट रह जाएगा।

इस तरह से आधे हिस्से को कुचालक और आधे को सुचालक रखकर विद्युत-परिपथ को तोड़ने-बनाने की व्यवस्था की गई है, जिसकी बात शुरुआत में की गई थी।

* छल्ला तैयार हो जाने के बाद एक स्टोव-पिन को कैंची की मदद से दो बराबर हिस्सों में काट लो।
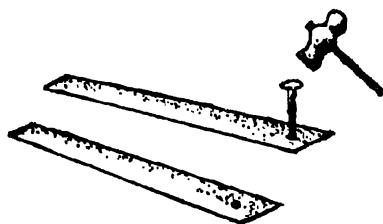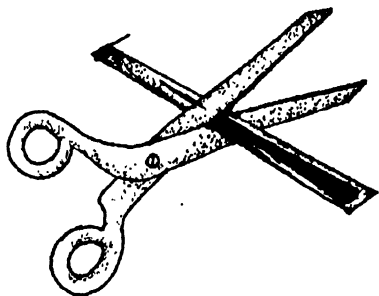
* एक छोटी कील से दोनों टुकड़ों के सिरों में एक-एक छेद बनाओ।

* अगर चकती चुम्बक मिल जाए तो उसे साइकल ट्यूब के छल्लों की मदद से सैल के ऊपर चढ़ा दो। दरअसल, हमें चकती या छड़ चुम्बक से ऐसा इंतज़ाम करना है जिससे एक ही ध्रुव छल्ले की तरफ रहे।
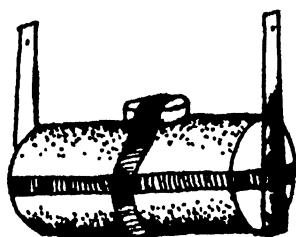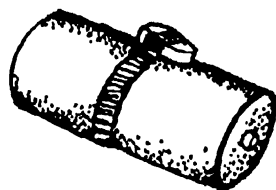
* एक और साइकल ट्यूब के छल्ले को सेल पर लम्बाई में चढ़ा दो। इस छल्ले में दोनों तरफ स्टोव-पिन फंसानी होगी जिससे पिनें सेल के धन और ऋण सिरों से सट जाएं, एकदम छू जाएं। स्टोव की इन पिनों के सहारे ही विद्युत-परिपथ पूरा होता है।

* अब दोनों पिनों को थोड़ा-सा फैलाकर, उनके सुराख में तांबे का छल्ला डाल दो।
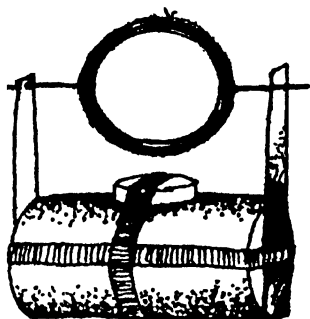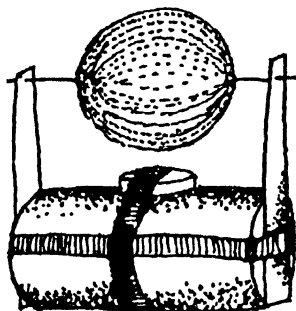
* इस मोटर के सब हिस्सों, सम्पर्क और संतुलन, जांच-परखने के बाद छल्ले को हल्का-सा धक्का दो। घूमने लगा न?

* अगर छल्ला थोड़ी देर घूमकर रुक जाए तो उल्टी दिशा में धक्का देकर देखो।
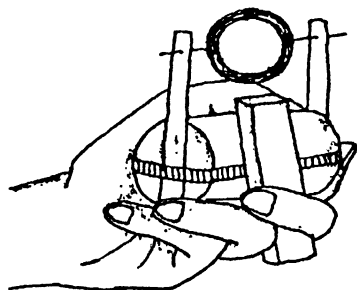
अगर मोटर फिर भी न चले तो आपको यह सब फिर से देखना होगा:

- छल्ले का संतुलन।
- छल्ले के दोनों सिरों को एक-एक तरफ से अच्छी तरह से घिसा है न? और कहीं पूरे सिरों को तो सफाचट नहीं कर दिया न?
- सब विद्युत सम्पर्क। कहीं जंग तो नहीं लगा रह गया?
- छल्ला चुम्बक के सिरे से बहुत दूर तो नहीं है कहीं ?

अगर मोटर ठीक से चलने लगे तो अब उसके साथ बहुत सारे खेल और प्रयोग हो सकते हैं।

* छल्ले में चित्र फंसाकर persistence of vision समझाने के लिए खिलौना बनाया जा सकता है।
* छल्ले में चक्करों की संख्या, छल्ले का साईज़, छल्ले का आकार...... इन सबको बदलकर देख सकते हैं कि क्या होता है। मोटर के चलने की रफ्तार, दिशा आदि पर क्या असर पड़ता है।
* मोटर को उल्टा रखकर, लटकाकर चलाने से एक और मज़ेदार बात समझ में आएगी।

● ●

मोटर बना लेने के बाद अब समझने की कोशिश करते हैं कि यह मोटर चल कैसे रही है, छल्ला घूम कैसे रहा है ?
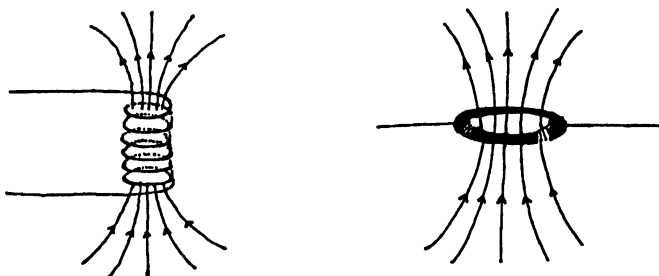
जब भी किसी कुंडली में से बिजली(विद्युत-धारा) गुज़रती है तो उससे एक चुम्बकीय क्षेत्र बनता है जिसका प्रभाव कुछ ऐसा होता है मानो कि उसके बीच एक छड़ चुम्बक रखी हो।

इसका अर्थ है कि जब भी स्टोव-पिन में फंसे हुए छल्ले का साफ किया हुआ यानी सुचालक हिस्सा स्टोव-पिन को छूता है तो छल्ले में से विद्युत-धारा गुज़रती है और छल्ला एक चुम्बक की तरह व्यवहार करने लगता है।

अर्थात् हमारे पास कुछ ऐसी स्थिति है जिसमें एक छड़ या चकती चुम्बक नीचे की ओर स्थिर रखा हुआ है और ऊपर की तरफ एक स्वतंत्र रूप से घूमने वाली छड़ (यहां छल्ला) रखी हुई है – जो घूमने पर आधा समय चुम्बक जैसा व्यवहार करेगी और आधा समय केवल छड़ जैसा।

जब तार का साफ किया हुआ हिस्सा स्टोव-पिन को छुए तब विद्युत-धारा बहेगी और छड़, चुम्बक की तरह व्यवहार करेगी। बाकी आधा समय चूंकि एनेमल पेंट वाला हिस्सा स्टोव-पिन के संपर्क में रहेगा इसलिए विद्युत-धारा नहीं बहेगी और छड़, छड़ ही रहेगी।

छल्ले को धक्का देकर घुमाने पर क्या होता है, अब उसे चित्रों द्वारा समझने की कोशिश करते हैं।

* नीचे का स्थिर चुम्बक और ऊपर की स्वतंत्र छड़ जिसे घुमाया जा सकता है।

●
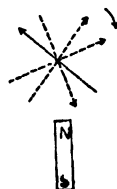
* मान लीजिए इस स्थिति में छल्ला पहुंचने पर उसका सुचालक हिस्सा स्टोव-पिन को छूता है। उसमें से विद्युत-धारा बहने पर वह चुम्बक जैसे बर्ताव करेगा। इससे नीचे वाले स्थिर चुम्बक के पास वाले (N) सिरे को दूर की ओर धक्का लगेगा। और दूर वाला (S) सिरा आकर्षित होगा जिससे छल्ला घूमने लगेगा।

●
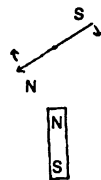
अभी भी वही स्थिति है, N को धक्का लग रहा है और S आकर्षित हो रहा है।
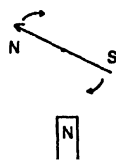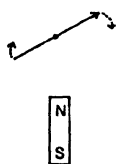
* छल्ले का आधा चक्कर पूरा होने पर उसका कुचालक सिरा स्टोव-पिन को छूने लगता है। विद्युत-धारा बन्द हो जाती है। पर पहले के धक्के के कारण छल्ला थोड़ी देर तक घूमता रहेगा।

●
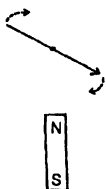
* विद्युत-परिपथ अभी भी बन्द है परन्तु शुरुआती धक्के के असर से छल्ले का घूमना अभी भी जारी है।

●
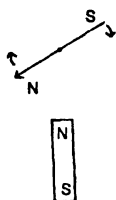
* छल्ले का सुचालक हिस्सा फिर से स्टोव-पिन को छूने लगता है और शुरुआत वाली स्थिति फिर से पैदा होती है जिसमें छल्ले को धक्का लगता है।

बस यही क्रिया चलती रहती है और छल्ला घूमने लगता है। यही है हमारी मोटर।

अब ज़रा सोचकर देखिए कि विद्युत पैदा करने के लिए जो डायनमो होता है वह कैसे काम करता होगा? कभी-कभी साइकल का बल्ब जलाने के लिए भी ऐसा डायनमो लगाया जाता है।

अन्त में, वहीं पर आ जाते हैं जहां से शुरुआत की थी – अपने आसपास दिखने वाली बहुत-सी मोटरें। उनमें और जो मोटर हमने बनाई है, इन दोनों में एक महत्वपूर्ण फर्क है जिसके कारण उनकी रचना भी थोड़ी अलग तरह की होती है, चाहे सिद्धान्त यही हो। अपनी मोटर डी.सी. (डायरेक्ट करंट) से चलने वाली मोटर है जबकि अपने आसपास घरों में ए.सी. (ऑल्टरनेट करंट) इस्तेमाल होता है

राजेश खिंदरी
चित्रः उमेश गौर

(अरविंद गुप्ता द्वारा संकलित पुस्तिका 'खिलौनों का बस्ता' पर आधारित)

ज़रा सिर तो खुजलाइए

क्या एक हाथी और एक मच्छर का वज़न एक समान हो सकता है? आप शायद कहें कि सवाल ही बेतुका है। पर ज़रा ठहरिए, यहां तो यह साबित किया जा रहा है कि एक मच्छर का वज़न एक जीते-जागते, भरे-पूरे हाथी के वज़न के बराबर है!

मान लीजिए हाथी का वज़न 'क' है और मच्छर का 'ख'। अगर दोनों का वज़न जोड़ दें तो मिलेगा:

क + ख

इसे हम 2 x ग का नाम दे देते हैं जिसमें 'ग', 'क' और 'ख' के बीच की कोई संख्या होगी जिसका दुगुना 'क' और 'ख' के जोड़ के बराबर है।

तो, क + ख = 2 ग ...(1)
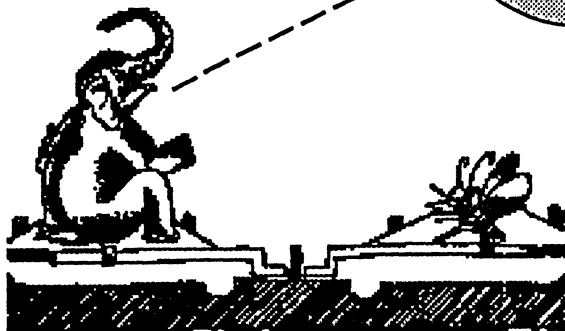
चित्रः उमेश गौर

अब इसी समीकरण को उलटफेर कर हमें दो और समीकरण मिलते हैं:

$$\text{क} - 2\text{ग} = -\text{ख} \quad ...(2)$$

$$\text{क} = -\text{ख} + 2\text{ग} \quad ...(3)$$

अगर इन दोनों समीकरणों को हम आपस में गुणा कर दें तो हमें मिलेगा:

$$\text{क}^2 - 2\ \text{ग क} = \text{ख}^2 - 2\ \text{ग ख} \quad ...(4)$$

इस समीकरण में दोनों ओर ग^2 जोड़ दें:

$$\text{क}^2 - 2\text{ग क} + \text{ग}^2 = \text{ख}^2 - 2\text{ग ख} + \text{ग}^2 \quad ...(5)$$

इस समीकरण के बराबर के निशान के दोनों ओर के हिस्सों को यूं भी लिखा जा सकता है:

$$(\text{क} - \text{ग})^2 = (\text{ख} - \text{ग})^2 \quad ...(6)$$

क्योंकि $(\text{क} - \text{ग})^2 = \text{क}^2 - 2\ \text{क ग} + \text{ग}^2$

और $(\text{ख} - \text{ग})^2 = \text{ख}^2 - 2\text{ग ख} + \text{ग}^2$

अब समीकरण (6) को देखें:

$$(\text{क} - \text{ग})^2 = (\text{ख} - \text{ग})^2$$

दोनों ओर वर्ग है जिसे हटाया जा सकता है:

$$\text{क} - \text{ग} = \text{ख} - \text{ग}$$

यानी $\text{क} = \text{ख}$

यह क्या हुआ? साबित हो गया न कि हाथी का वज़न 'क,' मच्छर के वजन 'ख' के बराबर है! अब आप ज़रा ढूंढिए कि इस पूरे हल में गलती कहां की गई है?

● ● ● ● ● ● ● ● ● ● ●

कक्षा में एक शिक्षक पूरी कोशिश कर रहा है बच्चों से दोस्ती करने की। स
कुछ आज़मा लिया उसने। पर बच्चे हैं कि डरे-सहमे जड़वत बैठे हैं। क्या आ
के साथ कभी ऐसा हुआ है? ऐसे ही कुछ अच्छे-बुरे अनुभवों की डायरी
है जॉन होल्ट की किताब 'बच्चे असफल कैसे होते हैं'। जॉन होल्ट ने कई साल
तक तरह-तरह के अनुभवों में से गुज़रने के बाद शिक्षक का पेशा अपनाय
उन्होंने बहुत से अलग-अलग किस्म के स्कूलों में पढ़ाया।

जुलाई 25, 1958

बिल हल की कक्षा का अवलोकन करते समय...

पिछले छः महीनों में जो कुछ देखा, समझा व सीखा उसमें एक अहम बात साफ-साफ उभरकर आई है। जो कुछ कक्षा में घटता है, असल में वह कतई नहीं होता जो शिक्षक सोचता है। कम से कम मेरी कक्षा में निश्चित रूप से वह नहीं होता था जो मैं सोचा करता था। वर्षों से मेरे दिमाग में अपनी कक्षा की एक छवि रही है। पर जिस वास्तविकता को मैं पहचानता रहा, वह असल में केवल आंशिक रूप से ही शारीरिक थी और आंशिक रूप से मानसिक व आत्मिक। दूसरे शब्दों में कहूँ तो कह सकता हूँ कि मैं केवल यह सोचता व मानता रहा कि मैं कमोबेश जानता हूँ कि मेरी कक्षा के छात्र क्या कर रहे हैं, क्या सोच रहे हैं, और क्या महसूस कर रहे हैं। आज समझ पा रहा हूँ कि वास्तविकता की मेरी छवि प्रायः पूरी तरह से ही गलत थी। मैं यह पहले क्यों नहीं पहचान सका?

कमरे के इस को
देख रहा हूँ। इस इरा
बल्कि यह जानने के
कितने भिन्न हैं जि
अचानक बैठे-बैठे ही
हम बच्चे का नाम पु
उसे देखने से यह अ
वह कक्षा में क्या क
हो तो उसके लिए f
से देखना ज़रूरी है।

कविता-पाठ के
को तो सामूहिक रू
अधिकांश बच्चे, क
देते। बल्कि जिन्हें स

बच्चे असफल कैसे होते हैं
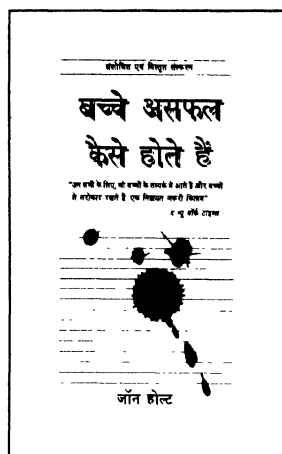
ठे-बैठे मैं कक्षा के बच्चों को
ाहीं कि उनकी चौकसी करूँ,
कि ये बच्चे उन बच्चों से
ाढ़ाया करता था। और तब
ाहसास हुआ कि जिस समय
ार उसे बुलाते हैं, उस समय
नहीं लगाया जा सकता कि
है। अगर सच में यह जानना
ताए लम्बे समय तक गौर

जब काफी सारे बच्चे, कहने
ाम करते हैं, लेकिन अक्सर
रहा है, उस पर ध्यान नहीं
ादा ध्यान देना चाहिए वे ही

सबसे कम ध्यान देते थे। जिन्हें सवालों के उत्तर आते थे, वे यह सुनिश्चित कर लेते कि शिक्षक यह जान ले कि वे उत्तर जानते हैं। सो उनके हाथ हमेशा हवा में लहराते रहते। सही उत्तर जानने के कारण, वे मूर्खतापूर्ण उत्तर देने वाले अपने सहपाठियों का पूरा लुत्फ़ भी उठा सकते थे। पर सभी कक्षाओं में ऐसे छात्र कम संख्या में होते हैं। तो फिर उन असफल बहुसंख्यक छात्रों का क्या हाल रहा होगा?

उनकी एकाग्रता इस बात पर निर्भर थी कि कक्षा में क्या हो रहा है। कक्षा के भावनात्मक तापमान के बढ़ते ही उनके कान खड़े हो जाते थे। अगर कोई झड़प हो जाती या कोई सहपाठी परेशानी में फँस जाता या गलत उत्तर देने पर किसी बच्चे का मज़ाक उड़ता तो वे हमेशा चौकन्ने रहते। और अगर किसी पिछड़े हुए बच्चे को ऐसी कोई आसान सी चीज़ समझाई जाती, जो हर कोई जानता हो, तो उनके हाथ हिलते और वे

"ओह-ओह" कहकर उसकी दुर्दशा का मज़ा लेते। पर जब कभी कोई चीज़ उन्हें समझाई जाती, सवाल पूछे जाते या कोई चर्चा होती तो उनका ध्यान या तो बिल्कुल नहीं रहता या कम रहता। कुछ सपनों में खोए रहते। उन्हें झटके से धरती पर बुलाने की मेरी चेष्टाएँ, उनके दोस्तों को मज़ेदार लगतीं, पर सपने देखने का सिलसिला वे जारी रखते। कुछ बच्चे पर्चियों की अदला-बदली करते, कुछ फुसफुसाते, कुछ इशारों में बातचीत करते और बहुत-से किताबों, कागज़, या मेज़ पर ही चित्र बनाते या रबर, पेंसिल, स्केल से ही खेलते रहते।

उन्हें सपनों में खोए हुए कितनी ही बार क्यों न पकड़ा जाता, कितनी ही शर्मिन्दगी का अहसास उन्हें क्यों न होता, पर यह आदत बनी रहती। बावजूद इसके कि हम अपनी कक्षा को एक रोचक व सुरक्षित स्थान बनाने का हर सम्भव प्रयास करते। कक्षा उनके लिए फिर भी एक उबाऊ, भ्रमित करने वाली और खतरनाक जगह ही बनी रहती। यानी सपनों में खो जाना ही पलायन का अकेला रास्ता उनके पास रह जाता।

इन हालातों में अगर शिक्षक बच्चों को केवल चुप या व्यस्त रखने के बदले सचमुच कुछ पढ़ाना भी चाहे, तो वह बहुत कुछ हासिल नहीं कर सकता। सच पूछें तो किसी कक्षा में बैठा कोई शिक्षक ठीक उस स्थिति में होता है जैसे घुप्प अंधेरी रात में जंगल में टॉर्च थामे, भटकता हुआ कोई व्यक्ति। जहाँ भी वह टॉर्च चमकाता है, उस ओर के जीव-जंतु टॉर्च की रोशनी में आ जाने के कारण असहज हो जाते हैं और उनका व्यवहार बदल जाता है। यानी निरीक्षण की प्रक्रिया ही व्यवहार को बदल देती है। व्यक्ति अपनी टॉर्च की रोशनी चाहे जिस ओर क्यों न फेंके, वह रात्रि-जीवन के बारे में बहुत कुछ नहीं जान पाता।

कक्षा में शिक्षक अपना ध्यान कभी इस, तो कभी उस बच्चे की ओर केन्द्रित करता है। पर ऐसा करते ही बच्चों का व्यवहार तत्काल बदल जाता है। जब कोई शिक्षक किसी एक बच्चे पर अपना ध्यान केन्द्रित कर, यह जानने की कोशिश करता है कि बच्चा क्या कर या पूछ रहा है, या वह स्वयं क्या समझा रहा है, तो उस समय वह यह नहीं जान पाएगा कि बाकी क्लास क्या कर रही है। अगर वह यह देखकर कि दूसरे बच्चे कुछ ऐसा कर रहे हैं जो उन्हें नहीं करना चाहिए, बच्चों को

टोक भी दें, तो भी बच्चों को यह पता होता है कि उन्हें केवल तब तक इंतज़ार करना है जब तक शिक्षक अपना काम दोबारा न शुरू कर दे। जो लोग कक्षा का अवलोकन करते हैं, वे यह सब क्यों नहीं देख पाते? कारण यह है कि उनमें से कुछ तो इतने लम्बे समय तक किसी समूह के बीच बैठते ही नहीं कि बच्चे उनकी उपस्थिति को सामान्य मान सकें। जो बैठते भी हैं, उनका ध्यान हमेशा बच्चों पर कम और शिक्षकों पर अधिक रहता है।

छात्र-शिक्षक (वे लोग जो शिक्षक बनने का प्रशिक्षण ले रहे होते हैं) अवश्य लम्बे समय तक किसी एक कक्षा में समय बिताते हैं। पर वे यह मानकर चलते हैं कि उनका काम एक *प्रवीण गुरू* को देखकर उससे *पढ़ाना सीखना* है, बच्चों को व्यवस्थित रखने के गुर सीखना है। उनका सरोकार केवल बच्चों को सम्भालने व नियंत्रित करने भर से होता है, बच्चों को समझने का वे कोई प्रयास नहीं करते। वे केवल शिक्षक को देखते हैं और शिक्षक की नज़र जिस चीज़ पर पड़े, सिर्फ उसी पर वे नज़र डालते हैं। इस तरह वे एक अनमोल अनुभव का काफी कुछ गँवा बैठते हैं।

मुझे तो यह आवश्यक लगता है कि ऐसी स्थितियाँ पैदा की जाएँ, जहाँ दो अनुभवी शिक्षक एक ही कक्षा में साथ-साथ हों। बच्चों के एक समूह को पढ़ाते और उनका अवलोकन करते हों, ताकि वे बच्चों को बातचीत करते, सोचते, विचारते व काम करते देखें और यह समझ सकें कि आखिर बच्चे क्या देख व सुन पाते हैं।

यह तो तय है कि स्कूल के पास ऐसी कोई वित्तीय व्यवस्था नहीं है। वे तो बमुश्किल एक कक्षा में एक शिक्षक उपलब्ध करा पाते हैं। कभी-कभी लगता है कि कुछ संस्थान इस काम में मदद कर सकते, तो अच्छा होता। वे तो हमेशा ही तमाम ऐसी महत्वाकांक्षी योजनाओं के लिए अनुदान देते रहते हैं, जिनका परिणाम केवल प्रचार या कोई सैद्धांतिक शोध-परियोजना होती है। शायद उन्हें लगता है कि दो शिक्षकों पर इस काम के लिए पैसा खर्च करना फिजूल है। पर मैं उनसे सहमत नहीं। जब कभी मैं इस वर्ष के अनुभवों पर सोचता हूँ तो चकित रह जाता हूँ। इस दौरान मैंने बच्चों के व्यवहार और विचारों के बारे में इतना कुछ जाना है कि अनुसंधान व चिन्तन के तमाम नए रास्ते खुल गए हैं। मैं तो उन खोजों व उस ज्ञान के विचार से ही अभिभूत हो जाता हूँ जो

शिक्षक ऐसे मौके पाने पर स्वयं प्राप्त कर सकते हैं।

ऐसे अवलोकन से कुछ स्पष्ट संकेत इस बारे में भी मिलते हैं कि किसी वयस्क को कक्षा में अकेले काम करते समय क्या करना चाहिए। और तीन वर्षों बाद, अपनी कक्षा में मैं वह सब करने भी लगा जिसका जेम्स हर्नडन ने अपनी पुस्तक *हाउ टु सरवाइव इन योर नेटिव लैंड* में वर्णन किया है। सबसे पहले तो शिक्षक एक भौतिक, बौद्धिक व भावनात्मक जगह बनाता है, जहाँ बच्चे एक रोचक जीवन बिता सकें। *इसके बाद* ही वह यह देख सकता है कि बच्चे उस जगह का कैसा उपयोग करते हैं।

बर्नाड शॉ के नाटक *सीज़र और क्लिओपैट्रा* में क्लिओपैट्रा अपनी परिचारिकाओं से कहती है कि सीज़र ने उसे कहा है कि वह अपनी परिचारिकाओं को, जो कुछ वे चाहें, कहने की छूट दे। और जब क्लिओपैट्रा ने जानना चाहा कि इस छूट का मकसद क्या है तो सीज़र का उत्तर था, "ताकि तुम यह जान सको कि *वे क्या हैं?*" हमें भी अपने छात्र-छात्राओं के बारे में जानना है कि आखिर वे क्या हैं? और यह जानने के लिए हमें फाइलों में दबे छद्म मनोवैज्ञानिक निदानों को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है जिनमें बच्चे की कमियों की लम्बी फेहरिस्त हो। बल्कि आवश्यकता यह है कि हम उन्हें वैचारिक स्वतंत्रता दें। बोलने, करने की छूट दें - उस सीमा तक, जितनी किसी स्कूल में दे पाना सम्भव हो।

अगर हम शिक्षक बच्चों पर अपनी गिद्ध दृष्टि केवल इसलिए टिकाए रखें कि हम यह देख सकें कि वे वह सब कर या नहीं कर रहे हैं जो कुछ उन्हें करना या नहीं करना चाहिए, तो यह तय है कि हम सबसे रोचक और महत्वपूर्ण बातों से वंचित रह जाएँगे। शायद यही कारण है कि वर्षों के अनुभव के बावजूद कई शिक्षक बच्चों के असली स्वभाव को इतना कम समझते हैं। जो माता-पिता अपने बच्चों को घर पर ही पढ़ाते हैं, वे इस दिशा में कहीं अधिक प्रगति कर पाते हैं। उनके पास अपने बच्चों की रुचियों को *जानने* का समय भी होता है और इच्छा भी। वे उन सभी इंगितों को पढ़ पाते हैं जिनके द्वारा बच्चे अपने मनोभाव अभिव्यक्त करते हैं। जब शिक्षक स्वयं को एक बॉस, थानेदार या न्यायाधीश की पारम्परिक भूमिका में देखना बंद करेंगे, केवल तभी वे अपने शिक्षार्थियों को पहचान पाएँगे। केवल तभी वे उनकी सहायता कर सकेंगे।

उस समय जब, बिना कोई लम्बी-चौड़ी योजना बनाए, मैं अपनी कक्षा के बच्चों को आपस में बात करने का, साथ-साथ काम करने का मौका देने लगा तब अचानक उनके अनुभवों, विचारों, रुचियों को भी जानने लगा। मुझे तब यह भी सूझने लगा कि मैं कैसे अपनी कक्षा को एक काम की जगह बना सकता हूँ। *सच यह था कि बच्चों को मैं कुछ सिखा पाता, उसके पहले उन्हें ही मुझे बहुत कुछ सिखाना पड़ा।*

इस दौरान मैंने एक छात्रा को *अपने दोस्तों से बात करते हुए* सुना तो जाना कि उसे घोड़े अच्छे लगते हैं। बच्ची को "पढ़ने में समस्या" आती थी। नई सूचना मिलते ही मैंने उसके आसपास *नेशनल वेल्वेट* की एक प्रति उपलब्ध करवा दी। जैसी मुझे आशा थी किताब उसे अच्छी लगी। उस कहानी और उसके पात्रों के प्यार ने उसमें अपनी "पढ़ने की समस्या" पर काबू पाने की इच्छा और ताकत जगाई। उसके मन में असल में यह भय बैठा हुआ था कि वह पढ़ना *सीख ही नहीं सकेगी* और ऐसा सिद्ध होने पर उसे लज्जित होना पड़ेगा।

जुलाई, 27, 1958

पिछले सालों में क्रमशः यह अहसास बढ़ा है कि बच्चे स्कूल को हर दिन, हर घंटे, शिक्षकों द्वारा आरोपित काम के संदर्भ में ही देखते हैं। पर शिक्षकों का नज़रिया तो यह नहीं है। कर्तव्यनिष्ठ शिक्षकों के मन में तो एक महान लक्ष्य की ओर यात्रा की एक छवि होती है। उन्हें लगता है कि उस गंतव्य की महिमा ही रास्ते की सारी तकलीफों और अड़चनों को सहनीय बना डालती है। अगर शिक्षक इतिहास पढ़ाता है तो उसे लगता है कि इतिहास सा रोचक, उत्तेजक या महत्वपूर्ण विषय कोई है ही नहीं। वह मानता है कि यह छात्रों का सौभाग्य है कि वे उसके ज्ञान में हिस्सा पा रहे हैं। शिक्षक अगर फ्रेंच पढ़ाता है तो वह फ्रेंच साहित्य के गौरव व बोलचाल की भाषा के माधुर्य और सौंदर्य के बारे में सोचता है। और फ्रांसीसी पाक-कला का शिक्षक पाक-कला के रस के विषय में सोचता है। उसे यह लगता है कि वह इन सभी आनन्दों को अपने शिक्षार्थियों को परोस रहा है। हर विषय का शिक्षक इस तरह अपने-अपने विषय के बारे में सोचता है।

स्पष्टतः इस सोच का कारण यह है कि शिक्षक यह मान लेते हैं कि उनकी और उनके छात्रों की रुचियाँ समान हैं। मुझे भी यही लगता था कि मैं अपने छात्रों का एक ऐसी यात्रा के

दौरान मार्गदर्शन कर रहा हूँ जो वे करना तो चाहते हैं, पर मेरे बिना पूरी नहीं कर सकेंगे। यह तो मैं भी जानता था कि यात्रा कठिन है, पर साथ ही यह विश्वास मन में था कि उस गंतव्य को बच्चे भी उतना ही साफ-साफ देख पाते हैं, जितना मैं। और तो और, मैं तो यह भी मानता था कि वे वहाँ तक पहुँचने को भी उतने ही आतुर हैं, जितना मैं। उस समय मुझे यह बेहद आवश्यक लगता था कि मैं छात्रों में यह भावना जगाऊँ कि हम जिस ओर बढ़ रहे हैं वह एक सार्थक गंतव्य है।

आज मैं जानता हूँ कि इस आशय से मैंने बच्चों को जो कुछ भी कहा होगा, वह सब निरर्थक ही था। मैं तो शायद तब यह भी सोचता था कि मेरे छात्र मेरी कक्षा में इसलिए हैं, क्योंकि वे वह सब सीखना चाहते हैं जो मैं उन्हें सिखाता था। पर मेरे छात्र स्थिति को कहीं बेहतर समझते थे। वे स्कूल में महज़ इसलिए थे क्योंकि उन्हें वहाँ दाखिल किया गया था। मेरी कक्षा में वे इसलिए थे क्योंकि उन्हें वहाँ भेजा गया था। और फिर वे मेरी कक्षा में न होते तो किसी दूसरी कक्षा में होते, जो सम्भवतः और बुरी हो सकती थी।

बच्चों का स्कूल में आना और उनका डॉक्टर के पास जाना, इन दोनों स्थितियों में समानता है। डॉक्टर यह कहते हुए पगला भी जाए कि उसकी दवा बच्चे के लिए बेहद फायदेमंद है, फिर भी बच्चे का पूरा ध्यान दवा की कड़वाहट या अपनी पीड़ा की ओर ही केंद्रित रहता है।

सच पूछें तो अगर बच्चों का बस चलता तो वे किसी हालत में इन स्थितियों में नहीं फँसते। सो, स्कूल में जो भी बच्चे होते हैं वे एक गरिमामय गंतव्य की ओर आतुरता से कदम बढ़ाने वाले नन्हे यात्रियों की टोली नहीं, बल्कि ज़ंजीरों में जकड़े बंदियों की तरह हैं। वे उस ऊबड़-खाबड़ कँटीली राह पर महज़ इसलिए चलते हैं क्योंकि दंड का भय उनके सामने मुँह बाए खड़ा होता है। सच तो यह है कि अपने गंतव्य को वे कतई देख नहीं पाते, बल्कि आसपास उन्हें ऐसी धुंध घेरे रहती है कि दो कदम दूर की राह तक नज़र नहीं आती। सच, ऐसे ही लगते हैं बच्चों के स्कूल। स्कूल एक ऐसी जगह है जहाँ उन्हें वे भेजते हैं, जहाँ वे उन्हें तमांम ऊटपटाँग कामों को करने को कहते हैं। अगर उनके बताए गए कामों को सही न किया जाए तो वे बच्चों का जीना दूभर कर सकते हैं।

बच्चों के लिए स्कूल में सबसे महत्वपूर्ण काम "सीखना" नहीं है, फिर

चाहे इस धुँधले शब्द का कोई भी अर्थ क्यों न हो। बल्कि उनके लिए मुख्य है रोज़मर्रा के कामों को कर डालना या किसी तरह निपटा देना। असल में दिया गया हर काम बच्चों को एक लक्ष्य लगता है। वे उसे कैसे पूरा करते हैं, इससे उनका कोई सरोकार नहीं होता। अगर वे उसे पूरा कर परे सरका सकते हैं तो वे वैसा कर देते हैं। पर उनका अनुभव यह बताता है कि अगर वे काम स्वयं न कर सकें तो किसी न किसी हथकंडे को अपनाना ही बेहतर होगा। सो वे वैध नहीं तो अवैध तरीके अपनाते हैं। यानी बच्चों को कोई भी काम सौंपने का लक्ष्य ही परास्त हो जाता है।

दूसरों से अपना काम करवाने में बच्चे माहिर होते हैं। वह दिन अभी तक मेरे दिमाग में ताज़ा है जिस दिन रूथ ने मेरी आँखें खोल दी थीं। हम गणित के सवाल कर रहे थे। मैं अपने आप को दाद दे रहा था कि मैं उसे सीधे-सीधे सवाल हल करने का तरीका बताने के बदले सवाल दर सवाल पूछ उसे "सोचने" पर बाध्य कर रहा हूँ। काफी समय लग रहा था इस सबमें। मेरे हर सवाल के जवाब में वह चुप्पी साधे रही। न उसने कुछ किया, न ही कुछ कहा। वह चुप बैठी अपने चश्मे के पीछे से मुझे घूरती रही। मैं हर बार अपने सवालों को आसान करता चल रहा था। पर वह तब तक चुप्पी साधे बैठी रहती जब तक मैं एक आसान सवाल तक न पहुँच जाता। ऐसा मैं इसलिए कर रहा था, ताकि वह बेझिझक उत्तर दे सके। हम यों रेंग रहे थे कि अचानक मैंने गौर किया कि वह तनिक भी सोच नहीं रही थी। वह शान्त मन से मुझे देख रही थी। वह मेरी सहनशक्ति जाँच रही थी और उस प्रश्न का इंतज़ार कर रही थी, जिसका उत्तर देना आसान हो। मैं चौंका। मन में सोचा, "लो, इसने तो मुझे ही फँसा दिया।" रूथ यह सीख चुकी थी कि वह अपना काम मुझसे कैसे करवा ले। ठीक यही तरीका वह दूसरे शिक्षकों के साथ भी अपनाती रही थी। और अगर मैं झक में आकर उसे सीधे-सीधे हल नहीं बताता तो वह मुझसे सवाल दर सवाल होते हुए उत्तर उगलवा ले रही थी।

स्कूल और शिक्षक, दोनों ही बच्चों की रणनीतियों के प्रति उतने ही अंधे होते हैं, जितना मैं था। अन्यथा वे विषयों के पाठ्यक्रम ऐसे बनाते जिनसे केवल सफल छात्रों के ही उत्तीर्ण होने की सम्भावना रहती। केवल वही छात्र उत्तीर्ण होते, जिन्होंने अर्थों पर विचार किया हो। यानी बिना

सोचे-समझे अपनाए गए सारे अवैध हथकंडे विफल रहते। पर स्कूलों में इसका उल्टा ही होता है। स्कूल केवल *उत्पादक* छात्रों को ही उत्साहित करते हैं। ये ऐसे बच्चे होते हैं जिनकी रुचि हर हालत में "सही उत्तर" तक पहुँचने में रहती है व ऐसे ही बच्चे स्कूलों में सफल होते हैं। जो तंत्र ही "सही उत्तरों" पर चलता हो उसमें इसके अलावा हो भी क्या सकता है? यही वजह है कि स्कूल *विचारक* छात्रों को हतोत्साहित करते हैं।

कुछ समय पहले तक मैं यह भी नहीं जानता था कि बुरे छात्र पढ़ाए जाने वाले विषयों के बारे में अच्छे छात्रों से अलग तरह से सोचते हैं। मैं यह मानता था कि वे केवल उन विषयों में अदक्ष हैं। पर अब मुझे लगा है कि जब बच्चों पर असफलता की संभावना और भय हावी होने लगते हैं तो वे एक खास तरह से सोचने और व्यवहार करने पर बाध्य हो जाते हैं। उनकी रणनीतियाँ तब आत्मविश्वास से भरे बच्चों से भिन्न हो जाती हैं। एमिली इसका अच्छा उदाहरण है। उसमें अपने किए हुए काम को तटस्थ हो गौर से देखने की भावनात्मक व बौद्धिक क्षमता ही नहीं है। वह अपने विचारों की वास्तविकता से तुलना नहीं कर सकती। न ही उनका मूल्य तोल पाती है। वह मुझे हमेशा एक ऐसे असहाय जन्तु की याद दिलाती है जो किसी खतरे का सामना कर रहा हो। ऐसा पशु जो हवा के वेग से दौड़ता है, मुड़कर देखता तक नहीं, क्योंकि वह बखूबी जानता है कि पीछे खतरा है। उस खतरे से जितना दूर वह हो सकती है, उतना दूर भाग खड़ी होती है। क्या दूसरों में भी भय की ऐसी प्रतिक्रियाएँ होती हैं?

सितम्बर 22, 1958

अपने शिक्षकों को पहचानने में बच्चों को समय नहीं लगता। कुछ बच्चे तो यह पहले से ही जानते हैं कि शिक्षकों के सामने काफी बोलना चाहिए और तमाम विचार उछालने चाहिए। फिर चाहे वे विचार कितने ही विचित्र क्यों न हों। पर हम उन बच्चों के साथ क्या करें जो सोचते हैं, सोचना चाहते और सोचना पसंद करते हैं, पर बोलना नहीं?

मेरी गणित की कक्षाओं में मेरे सामने एक दुविधा हमेशा रहती है। मैं चाहता हूँ कि बच्चे यह भी सोचें और समझें कि जो कुछ वे कर रहे हैं वह वे क्यों कर रहे हैं। अगर मैं अपने सवाल पेचीदा या कठिन बनाता हूँ तो

मुझे लगता है कि मेरे छात्र मेरे मन को पढ़ने के प्रयास में जुटने लगे हैं। और तब वे अजीबोगरीब विचार, उत्तर के रूप में उछालने लगते हैं। जैसा उन्होंने आज सुबह किया। लगता है उन्होंने मेरी एक टिप्पणी को उसके शाब्दिक अर्थ में ग्रहण कर ही ऐसा किया होगा। मैंने कहा था कि किसी विचार के न होने से बेहतर है कोई गलत विचार होना। यह मैंने इसलिए कहा था ताकि बच्चे पूरे आत्मविश्वास से उत्तर दें। क्या मैं अब भी वहीं कर रहा हूँ जो रूथ के साथ करते हुए मैंने स्वयं को पिछले साल पकड़ा था? क्या मैं अब भी उनके लिए सोच रहा हूँ।सम्भव है कि कोई मध्यम मार्ग हो ही नहीं। शायद मुझे कभी कठिन, तो कभी सरल सवाल उठाने चाहिए।

असल में मुश्किल यह थी कि मैं बहुत अधिक सवाल पूछता था। काफी समय बाद मैंने सवाल करना बंद किया, चुप रहना सीखा। उस चेष्टा को ही दबाया जो मुझे यह जानने के लिए, कि बच्चे सब कुछ समझ गए हैं या नहीं, सवाल करने पर उकसाती थी। हमें अपने शिक्षार्थियों को यह तय करने देना होगा कि वे कब कुछ पूछना चाहते हैं। कई बार उन्हें यह जानने में भी समय लगता है कि उन्हें कौन-सा सवाल पूछना है? सीखने वालों की समझ को सतत जाँचना शिक्षक का सही काम नहीं है। यह दायित्व तो है ही शिक्षार्थी का। और सच तो यह है कि इसकी सही जाँच भी वही कर सकता है। शिक्षक का काम है शिक्षार्थियों द्वारा उठाए गए प्रश्नों का उत्तर देना। जब वे कुछ खुलासा चाहें तो उनकी समझ को और पैना व स्पष्ट बनाना।

हम बच्चों की समझ को इसलिए जाँचना चाहते हैं न कि हम किसी चीज़ को और साफ समझने में उनकी सहायता कर सकें? पर हम शायद यह नहीं जानते कि बच्चों को जाँच का ऐसा तरीका दूसरी स्कूली परीक्षाओं की तरह ही लगता है। वे इस जाँच से, कक्षा में शिक्षक द्वारा पूछे गए सवालों से और अधिक घबरा जाते हैं, और अधिक भ्रमित होते हैं।

पुस्तकः बच्चे असफल कैसे होते हैं
लेखकः जॉन होल्ट
अनुवादः पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा
पृष्ठः 283, वर्षः 1993,
मूल्यः 40 रुपए
प्रकाशकः एकलव्य, ई-1/208
अरेरा कॉलोनी,
भोपाल - 462 016

नक्शों के साथ कुछ खेल

भारत जोड़ो

बचपन में हम जिग्सॉ पज़ल बनाते थे – किसी चित्र के कई सारे टुकड़ों को जोड़कर चित्र फिर से पूरा करना। कभी-कभी भारत का जिग्सॉ भी मिल जाता था – जिसमें कई टुकड़े जोड़कर भारत का पूरा नक्शा बनाना होता था। जब हम पढ़ाने लगे तो एक विचार आया कि क्यों न हम राज्यों व देशों के बारे में पढ़ाने के लिए जिग्सॉ का उपयोग करें?

नक्शे के जो इस तरह के जिग्सॉ बाज़ार में मिलते हैं, वे तो बहुत ही महंगे होते हैं। साथ ही उनमें एक समस्या भी रहती है – आमतौर पर उनमें अलग-अलग राज्यों के टुकड़े नहीं होते। इसलिए शैक्षणिक दृष्टि से उनकी उपयोगिता कम ही है। अगर कहीं राज्यों के हिसाब से टुकड़े किए हों तो ऐसी जिग्सॉ और भी महंगी मिलती है।

हमें इसका एक सस्ता विकल्प सूझा। हमने एक कार्डशीट पर भारत का नक्शा उतार लिया और उसमें से अलग-अलग राज्यों को कैंची से काटकर निकाला। बच्चों को जब इन्हें जोड़ने दिया तो उन्हें बड़ा मज़ा आया।

"अरे ये उत्तरप्रदेश यहां थोड़े ही आएगा – इसे मध्यप्रदेश के ऊपर फंसाओ।"

"अरे मध्यप्रदेश तो लंगड़ा ऊँट जैसा दिखता है!"

"जम्मू-कश्मीर तो सबसे ऊपर होगा।"

बच्चे राज्यों की स्थिति और आकार से भली-भांति परिचित हो जाते हैं इस खेल से।

नक्शे का सस्ता स्टेंसिल

राजस्थान में एक शिक्षक गोष्ठी में हम इस खेल के बारे में चर्चा कर रहे थे और भारत के राज्यों का जिग्सॉ बना रहे थे। तब वहां के कुछ शिक्षकों ने नक्शा उतारने का एक मज़ेदार तरीका सुझाया। आप भी इसे अपने यहां करके देखिए।
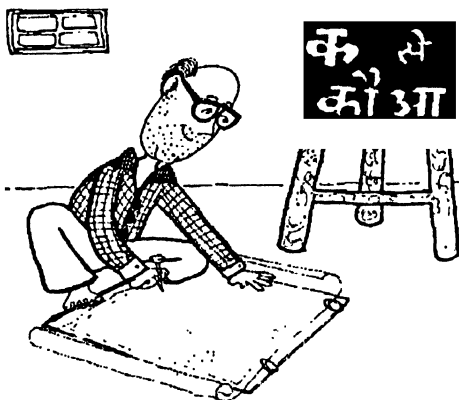
1. दीवार पर लटकाने वाला कोई बड़ा-सा नक्शा लें और उस पर उतनी ही बड़ी ट्रेसिंग-शीट स्टेपलर या आलपिन की मदद से लगा लें।

2. एक आलपिन लेकर नक्शे पर बनी अंतर्राष्ट्रीय एवं राज्यों की सीमाओं व तटीय रेखाओं पर चुभोते जाएं ताकि उन लकीरों की जगह ट्रेसिंग शीट पर आधा-आधा से.मी. की दूरी पर छेद बन जाएं। यह काम काफी सावधानी से करना होगा ताकि सारी ज़रूरी रेखाएं पूरे तौर पर ट्रेसिंग कागज़ पर आ जाएं। छेद एकदम बारीक हों तो अच्छा रहेगा।

इस तरह तैयार हो गया अपना नक्शे का स्टेंसिल। अब इस से चाहे जितनी प्रतियां बना सकते हैं हम।

3. एक कार्डशीट लेकर उस पर अपने स्टेंसिल (ट्रेसिंग शीट) को क्लिप की मदद से लगा दें।

4. एक कांच के गिलास या कप में थोड़ा-सा मिट्टी का तेल लें और उसमें आधा चम्मच नील
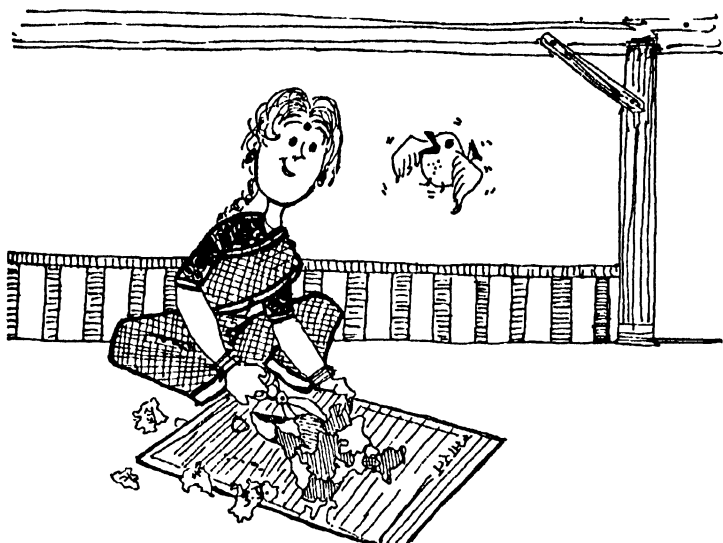
मिला लें। हां, कपड़ों को चमकाने वाला नील।

5. थोड़ी-सी रुई इस मिश्रण में डुबोकर हल्के से निचोड़ लें। फिर इस रुई को ट्रेसिंग शीट पर बनी छेद वाली लकीरों पर फेरें। सारी लकीरों पर फेरने के बाद ट्रेसिंग शीट को अलग हटा दें। कुछ देर कार्ड-शीट और स्टेंसिल दोनों को सूखने दें। इससे मिट्टी का तेल उड़ जाएगा और सिर्फ नील के निशान रह जाएंगे। अब आप आवश्यकता अनुसार रंगीन पेन, स्केच-पेन, पेंसिल से लकीरों को रंग सकते हैं।

इस तरह उसी स्टेंसिल से आप चाहे जितने नक्शे बना सकते हैं। फिर इन का तरह-तरह का उपयोग हो सकता है। कुछ को काटकर जिग्सॉ बना सकते हैं, कुछ में अलग-अलग रंग भरकर ढेर सारी बातें समझा सकते हैं (जैसे ज़मीन, सागर, पहाड़.....)।

यही नहीं अगर स्कूल में सफेद या पीली दीवार मिले तो दीवार पर भी इसी तरह से नक्शे बना सकते हैं।

सी. एन. सुब्रह्मण्यम

(एकलव्य के सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध)

एकलव्य द्वारा चलाए जा रहे होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में दूर-दराज़ फैले हुए बच्चों-विद्यार्थियों से संपर्क बनाने का एक पुराना परन्तु फिर भी अनोखा तरीका अपनाया गया है। जैसे और जगह भी होता है -- यहां भी एक काल्पनिक चरित्र बच्चों को सवाल पूछने के लिए उकसाता है, नाम है उसका सवालीराम। अनोखा इस मायने में कि बच्चों के ढेर सारे पत्रों में से सिर्फ एक-दो के बजाए, हर बच्चे को उस के ख़त का जवाब दिया जाता है। आप ही सोचिए कि कहीं एक छोटे-से गांव में रह रहे बच्चे को अपने खत का जवाब पाकर कैसा लगता होगा।

हर महीने ढेर सारे खत आते हैं बच्चों के -- किसी में सिर्फ एक-दो सवाल तो कुछ ऐसे जिन पर तिल धरने की भी जगह नहीं! और प्रश्नों की विविधता का भी क्या कहना। इस स्तंभ में हम आपके सामने हर बार उनके कुछ सवाल और उन्हें दिए गए जवाब प्रस्तुत करेंगे।

सवालीराम
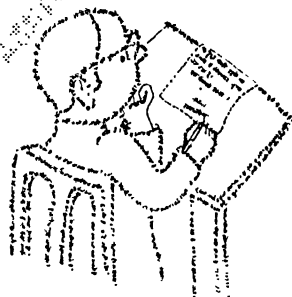
हवाई जहाज कैसे उड़ता है?

दूर, ऊंचे नीले आसमान में उड़ता हवाई जहाज देखना सभी को अच्छा लगता है। बहुत बार हवाई जहाज़ को देखकर तुम्हारे मन में प्रश्न उठता होगा कि इतना बड़ा और भारी हवाई जहाज हवा में कैसे उड़ लेता है?

इस बात को समझने के लिए तुम एक आसान-सा प्रयोग करके देखो। कागज की एक पतली-सी पट्टी काटकर उसे एक सिरे से पकड़ो। जो सिरा हाथ में है उसे अपने मुंह के पास लाकर पट्टी की ऊपरी सतह पर जोर-से फूंक मारो।

तुम्हें यह देखकर हैरानी होगी कि पट्टी नीचे दबने की बजाए ऊपर की तरफ उठ रही है। और उसे ऊपर बनाए रखने के लिए तुम्हें लगातार फूंक मारते रहना पड़ रहा है। तुम जैसे ही फूंकना बंद कर दोगे, पट्टी वापस नीचे लटक जाएगी।

हवाई-जहाज़ को भी तो उड़ने के लिए पहले हवा में ऊपर उठना पड़ता है और फिर आगे बढ़ना पड़ता है। ऊपर उठने वाला काम उसी सिद्धांत से होता है जिससे इस प्रयोग में कागज़ ऊपर उठा था।

पर फर्क इतना ही है कि उसके ऊपर फूंक मारने के बजाए हवाई जहाज़ को ही तेज़ रफ्तार से दौड़ा दिया जाता है। उड़ान भरने से पहले जहाज़ उड़ान पट्टी पर बहुत तेज़ी से दौड़ता है। इससे हवाई जहाज़ के पंखों के ऊपर और नीचे की हवा बहती हुई सी ही लगती है।

पर कागज़ की पट्टी के ऊपर फूंक मारने वाले प्रयोग से बात यहीं फर्क हो जाती है। कागज़ की पट्टी के सिर्फ ऊपर की ओर फूंक मारी थी पर यहां तो हवा जहाज़ के ऊपर और नीचे, दोनों तरफ बहती प्रतीत होती है। फिर भी हवाई जहाज़ ऊपर की ओर उठता है। इसके लिए कभी ध्यान से हवाई जहाज़ के पंखों का आकार देखें तो बात कुछ समझ आएगी। या फिर हवाई जहाज़ के पंखो के आकारनुमा कागज़ की आकृतियां बनाकर एक प्रयोग की मदद से भी हम इसे समझ सकते हैं।

कागज़ की दो पट्टियां लो। एक 8 से.मी. x 4 से.मी. की और दूसरी 10 से.मी. x 4 से.मी. की। चित्र में जैसा दिखाया है वैसे बड़ी पट्टी को छोटी पट्टी पर चिपकाओ। एक तरफ ऊपर से और दूसरी तरफ घुमाकर नीचे से। अब इसके बीच से एक साफ सूजा (या लम्बी सुई) घुसा दो और उसे 5-6 बार सूजे पर ऊपर-नीचे खिसका लो ताकि वह आसानी से उस पर ऊपर-नीचे हो सके।
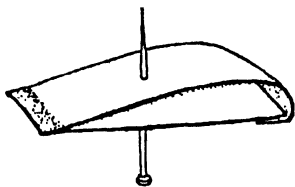
अब सूजे को चित्रानुसार पकड़कर चौड़ी ओर से मुंह से फूंको। आकृति को गोल-गोल घूमने से रोकने के लिए शायद तुम्हें दूसरे हाथ से उसे दोनों ओर से सहारा देना पड़े। और फूंकते समय ध्यान रखना कि हवा आकृति के ऊपर-नीचे, दोनों ओर से बहे। क्या हुआ फूंकने पर?

ऐसा ही कुछ हवाई जहाज़ के साथ भी होता है। उसमें पंखों का आकार कुछ ऐसा बनाया जाता है कि जहाज़ के दौड़ने पर हवा को पंखों के ऊपर से गुज़रने के लिए, नीचे की बनिस्बत ज़्यादा दूरी तय करनी पड़ती है। पर दोनों ओर की हवा को समय तो बराबर ही मिलता है इसलिए ऊपर की हवा की रफ़्तार नीचे की हवा से ज़्यादा होती है।

इसलिए ऊपर की ओर दबाव कम हो जाता है। और नीचे की हवा ऊपर की ओर उठने की कोशिश में पंखों को धकेलती हुई हवाई जहाज़ को ऊपर उठा लेती है। और जहाज़ फुर्र !

इतने भारी-भरकम जहाज़ को हवा में उड़ाने के लिए उसके ऊपर और नीचे के दबाव में काफी अंतर की ज़रूरत पड़ती है। इसीलिए जहाज़ उड़ान पट्टी पर लगभग 200 कि.मी. प्रति घंटे की रफ़्तार से दौड़ते हैं।

अब देखते हैं कि हवाई जहाज़ को ज़मीन पर या हवा में दौड़ाने का यह काम किया कैसे जाता है? कुछ विमानों के अगले भाग में घूमने वाले बड़े-बड़े पंखे लगे होते हैं। जब ये पंखे इंजन द्वारा बहुत तेज़ी से घुमाए जाते हैं, तो हवा को ज़ोर-से पीछे की तरफ धकेलते हैं। और जहाज़ आगे बढ़ने लगता है।

जेट विमान भी इसी सिद्धांत पर चलते हैं पर उनमें इंतज़ाम थोड़ा अलग होता है। इनके इंजनों में ईंधन और हवा के मिश्रणों को जलाया जाता है। जलने से पैदा हुई गैसें बहुत तेज़ी से विमान के पिछले हिस्से से निकलती हैं। उसके कारण गुब्बारे में से हवा निकलने पर जैसे वह उल्टी दिशा में भागता है, उसी तरह ये विमान आगे को दौड़ने लगते हैं।
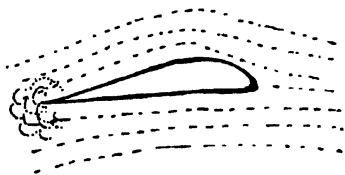
इस तरह जब विमान आवश्यक रफ़्तार पकड़ ले तो पंखों के ऊपर की ओर हवा का दबाव कम होने के कारण ऊपर उठने लगता है।

यह तो थी हवाई जहाज़ की हवा में ऊपर उठने और आगे बढ़ने की बात। पर तुमने कभी सोचा है कि वह एक बार उड़ने लगे तो फिर उसके बाद नीचे-ऊपर कैसे जाता होगा? दाएं-बाएं अपनी दिशा कैसे बदलता होगा? नीचे उतारने के लिए जहाज़ को धीमा करके उसके नीचे और ऊपर की हवा के दबाव के बीच जो अंतर होता है उसे कम किया जा सकता है। और अंततः पंख के ऊपर और नीचे के दबाव में फर्क को खत्म करने पर जहाज जमीन पर उतर आएगा। पर ऐसे तो जहाज़ धड़ाम-से नीचे गिरेगा। यानी ऊपर-नीचे जाने के लिए यह व्यवस्था तो नहीं चलेगी।

इसके लिए जहाज़ की पूंछ के पास वाले छोटे-छोटे पंखों में पीछे की ओर एक खास तरह की पट्टीनुमा बनावट होती है। यह पट्टियां जहाज़ के पंखों से कब्ज़े से लगी होती हैं। इन्हें ऊपर या नीचे की ओर मोड़ा जा सकता है। जब जहाज़ को ऊपर उठना होता है, तो इन पट्टियों को जिन्हें एलीवेटर (उत्थापक) कहा जाता है, थोड़ा-सा ऊपर की ओर उठाया जाता है। इससे जहाज़ की पूंछ नीचे की ओर होने लगती है। पूंछ की तुलना में आगे का हिस्सा ऊपर की
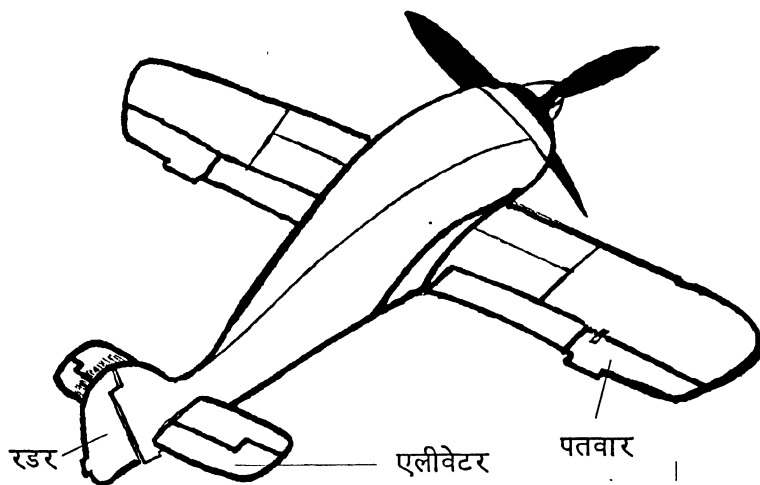
बच्चों द्वारा सवालीराम से पूछे गए कुछ सवाल हम आपके सामने भी रख रहे हैं। आप भी इनके बारे में सोचिए, इनके जवाब ढूंढिए और हमें लिखिए। उनमें से कुछ सटीक जवाब चुनकर हम अगले अंक मे छापना चाहेंगे।

1. मूंगफली के फूल तो पौधे पर लगते हैं – तो फिर मूंगफली ज़मीन में से कैसे निकलती है?
2. मनुष्य जब ग्रहों पर जाते हैं तो वज़न घटता-बढ़ता है। मनुष्य का वास्तव में वज़न कितना होता है और वह किस ग्रह पर जाने से होता है?
3. साबूदाना कैसे बनता है? क्या होता है उसमें?

ओर उठा होता है इसलिए जहाज़ ऊपर की तरफ जाने लगता है। और जब जहाज़ को नीचे उतरना होता है तो एलीवेटर को नीचे की ओर झुका देते हैं।

इसी तरह जहाज़ को दाएं-बाएं मोड़ने के लिए बड़े वाले पंखों के पीछे की तरफ लम्बी-पतली पट्टियां लगी होती हैं जिन्हें पतवार (एलरॉन) कहते हैं। ये भी पंखों के साथ कब्ज़ों से जुड़ी होती हैं। इनकी बनावट ऐसी होती है कि एक पंख की पट्टी को ऊपर की तरफ करो तो दूसरे पंख की पट्टी नीचे की तरफ ही मुड़ती है, और अगर उसे नीचे की तरफ झुकाओ तो दूसरी ऊपर की ओर उठती है – जिससे जहाज़ बाईं-दाईं तरफ मुड़ता है।

पूंछ के ऊपर उठे हुए हिस्से में खड़ी-लगी हुई पट्टी (रडर) भी यही काम कर सकती है परन्तु उसे कम ही इस्तेमाल किया जाता है। आमतौर पर रडर जहाज़ को अचानक मुड़ जाने से रोकने और संतुलन बनाए रखने के काम आता है।

हवाई जहाज़ की तरह चिड़िया भी हवा से भारी होती है, फिर भी मज़े-से उड़ती है। चूंकि वह अपने पंख फड़फड़ाकर अपने शरीर के ऊपर हवा के दबाव को कम कर लेती हैं, इसलिए उन्हें उड़ान-पट्टी जैसी किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं पड़ती। हेलिकाप्टर के पंख ऊपर होते हैं। इसलिए वह भी अपनी जगह से ही सीधे हवा में उड़ सकता है, चिड़ियों की तरह।

हां, कुछ पक्षी जैसे चील, गिद्ध आदि बहुत भारी होते हैं। इसलिए उन्हें हवा में उड़ने से पहले कुछ दूर तक ज़मीन पर दौड़ना पड़ता है।

इतिहास की खोज - करके देखो

अवशेषों की जांच-पड़ताल कर तरह-तरह के अनुमान लगाते हैं इतिहासकार। कुछ गतिविधियां करते हुए बच्चे भी इस प्रक्रिया को समझना शुरू कर सकते हैं।

हज़ारों साल पहले रहने वाले लोगों के बारे में इतिहासकार ऐसी सहजता के साथ लिखते हैं मानो कि वे उनके चिरपरिचित मित्र हों – वे उनके घर-बार, वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान और रीति-रिवाज़ों के बारे में बहुत-सी बातें बताते हैं जैसे कि उन्होंने यह सब खुद देखा हो। अक्सर बच्चे यह पूछ बैठते हैं कि इतनी पुरानी बातों के बारे में कैसे पता लगता है। ऐसे बच्चों को हम या तो डांटकर चुप करा देते हैं या कुछ मोटी-मोटी बातें कहकर टाल देते हैं जैसे – इतिहासकार खुदाई करते हैं और मिट्टी के नीचे दबी चीज़ों से पता लगाते हैं। मिट्टी के नीचे क्या मिलता है, उससे क्या और कैसे पता किया जाता है, ये सब न हम समझते हैं और न समझा ही पाते हैं।

इसलिए हमने यहां कुछ अभ्यास सुझाए हैं जिन्हें आप कक्षा में कर सकते हैं। इनका मकसद है, पुरातत्व के माध्यम से इतिहासकार बीती हुई बातों का पता कैसे करते हैं, यह समझना।

सौ साल बाद

मान लो कि किसी कारण तुम्हारे गांव के सब लोग गांव छोड़कर चले जाते हैं और पूरा गांव वीरान हो जाता है। धीरे-धीरे जैसे-जैसे समय गुज़रता है इस गांव के घर व अन्य इमारतें मिट्टी के नीचे दब जाती हैं। मान लो कि 500 साल बाद कोई उस जगह को खोदना शुरू करे जहां तुम्हारा स्कूल हुआ करता था तो उसे क्या-क्या चीज़ें मिलेंगी ?

अपनी शाला में रखी हुई व पड़ी हुई सब चीज़ों को ध्यान से देखो और ऐसी चीज़ों की एक सूची बनाओ जो 500 साल बाद भी बची रहेंगी।

1. ईंट की दीवार
2. . . . .
3. . . . .
4. . . . .

इन में से कौन-सी ऐसी चीज़ें हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह एक स्कूल के अवशेष हैं। क्या इन सब चीज़ों के आधार पर किसी और निष्कर्ष पर भी पहुंचा जा सकता है? मान लीजिए खुदाई करने वालों में बहस छिड़ गई। चार अलग-अलग लोग हैं, चार मत हैं उनके। कोई कहता है, "यह एक अम ्र आदमी का घर है।" दूसरे क कहना है, "यह एक पूजा-स्थल है।" तीसरे का मत और ही है, "अरे नहीं, यह तो एक गोदाम है।" चौथा कहता है, "सब गलत, यह तो एक सरकारी दफ़्तर के सिवाय कुछ हो ही नहीं सकता।"

यह भी मान लीजिए कि आप पांचवें व्यक्ति हैं जो यह कहे जा रहे हैं कि यह तो एक पाठशाला है। आप अपने साथियों के मतों का खण्डन कैसे करेंगे?

●

दरअसल पुरातत्व की मदद से इतिहास कुछ इसी तरह लिखा जाता है। एक जासूस की तरह अवशेषों का अध्ययन करके कई अटकलें लगाई जाती हैं। जिनमें से कुछ सही निकल सकती हैं तो कुछ गलत भी।
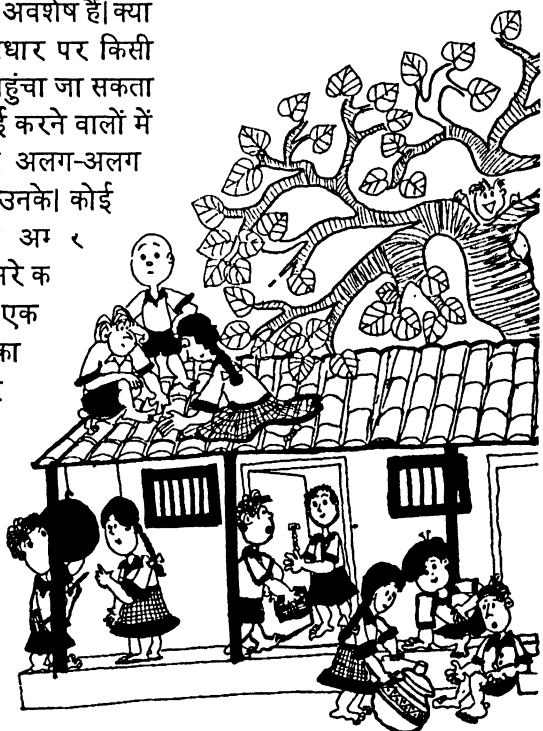
हम सब बचपन से एक प्रसिद्ध तालाब के बारे में पढ़ते आए हैं। लेकिन वह तालाब किस काम आता होगा, इस बात को लेकर ऐसी अटकलबाज़ी चलती है।

कोई कहता है,

"शहर के लोगों के लिए नहाने व तैरने के लिये बना था – ठीक वैसे ही जैसे तुर्की के हम्माम थे, जहां नागरिक पैसे देकर जाते थे, विश्राम करते थे, नहाते, मालिश करवाते आदि-आदि।"

दूसरे का कहना है,

"अगर यह सच है तो इसे शहर के बीचों-बीच होना चाहिए था। यह तो शहर के कोने में है, किले-बन्द टीले पर बना है। निश्चय ही यह एक पूजा-स्थल रहा होगा जहां देवी-देवताओं की पूजा होती होगी।"

एक और साहब फरमाते हैं,

"पूजा-स्थल हो तो पूजा-पाठ में काम आने वाली अन्य चीज़ें वहां से मिलनी चाहिए थीं लेकिन ऐसा कुछ मिला नहीं। इसे देखकर ऐसा लगता है कि यह राज्याभिषेक के कर्मकाण्ड से जुड़ा रहा है। हो सकता है कि उस समय यह मान्यता थी कि राजा को इस पवित्र तालाब में नहाकर ही राज्य करने का अधिकार प्राप्त होगा।"

इन में से क्या सही है और क्या गलत, यह बताने उस समय के लोग तो आएंगे नहीं – हमें ही अपनी सूझ-बूझ से तय करना है।

अक्सर खुदाई से प्राप्त बहुत छोटी चीज़ें बहुत बड़ी बातों की ओर इशारा करती हैं। जैसे कर्नाटक में स्थित सोने की खदानों के पास नीलम (लेपिज़ लजूली रत्न) का मिलना। वहां पर ये रत्न खुदाई के दौरान 2500 साल पुराने अवशेषों के साथ मिलते हैं।

मज़े की बात यह है कि नीलम पत्थर भारत में कहीं भी नहीं पाया जाता। नीलम अफगानिस्तान में एक खास जगह की खदानों से ही प्राप्त होता है। ऐसा पत्थर सुदूर दक्षिण कर्नाटक में प्राप्त होने का क्या मतलब हो सकता है आप खुद ही विचार कीजिए। इस बात को समझाने के लिए कक्षा में एक गतिविधि कर सकते हैं:

सभी छात्र-छात्राओं को 4-4 की टोली में बांटें। प्रत्येक टोली को एक-एक नोट (दो, पांच या दस का) दीजिए। छात्र-छात्राएं इनका बारीकी से अवलोकन करें। उनसे कल्पना करने को कहिए कि 500 वर्षों बाद कोई व्यक्ति यदि इन नोटों को खोजता है, तो वह इनकी सहायता से हमारे बारे में, हमारे समाज के बारे में क्या-क्या अनुमान लगाएगा। इस प्रक्रिया में आप

निम्नलिखित प्रश्न पूछकर उनकी मदद कर सकते हैं:

(1) यह कागज़ का टुकड़ा किस काम आता होगा?

(2) जिस देश का यह नोट होगा, उस देश का नाम क्या था?

(3) उस देश में नोट छापने का अधिकार किसे प्राप्त था?

(4) उस देश की मुद्रा का नाम क्या था?

(5) उस देश के पशु-पक्षी और पेड़-पौधों के बारे में क्या-क्या जानकारी मिलती है?

(6) कितनी भाषाएं बोली जाती थीं?

(7) कितनी लिपियां थीं?

(8) महत्वपूर्ण भाषा-लिपि कौन-सी थीं?

(9) उस देश की शासन व्यवस्था के बारे में क्या पता चलता है?

(10) इस नोट से देश की अर्थव्यवस्था के बारे में क्या अनुमान लगाया जा सकता है? किन-किन चीज़ों के कारखाने रहे होंगे, व्यापार कैसे होता होगा, अलग-अलग काम-धन्धे क्या रहे होंगे?

(11) इस नोट के कागज़ और छपाई से उनके तकनीकी विकास के बारे में क्या कहा जा सकता है?

(12) उन लोगों की साज-सज्जा एवं कलात्मकता के बारे में क्या कहा जा सकता है। उनकी साज-सज्जा में ज्यामितीय आकारों और वानस्पतिक आकारों का उपयोग किस तरह का था?

प्रत्येक टोली अपने-अपने अनुमान प्रस्तुत करे और उस पर चर्चा करे। जब 40-45 छात्रों के बीच ऐसी एक बहस छिड़ जाएगी तो उसका मज़ा ही कुछ और होगा। कितने तरह-तरह के विचार निकल आएंगे जिसका हम अंदाज़ भी नहीं कर सकते। दरअसल इतिहासकार को भी कुछ इसी तरह अपनी कल्पनाशीलता का उपयोग करना पड़ता है।

अब हम ऐसी ही एक गतिविधि सिन्धु घाटी के एक शहर मोहनजोदड़ो से मिली एक पत्थर की मुहर के साथ करेंगे।

यह मुहर मोहनजोदड़ो से प्राप्त हुई है और एक मुलायम पत्थर के चपटे टुकड़े से बनाई गई है। इसका मुहर के रूप में उपयोग किया जाता था। इसे चिकनी मिट्टी पर दबाने से यही आकृति उस पर अंकित हो जाती थी।

अब इस मुहर से हम कौन-कौन-सी जानकरियां हासिल कर सकते हैं। कक्षा में प्रत्येक टोली इस पर विचार करे और अपने-अपने निष्कर्ष बताए। चर्चा को आगे बढ़ाने के लिए आप ऐसे कुछ सवाल पूछ सकते हैं :

(1) यह मुहर कैसे बनी होगी? पत्थर को तराश कर इन्हें कौन बनाता होगा? किन औज़ारों से बनाया गया होगा इसे?

(2) मोहनजोदड़ो के लोग किन-किन जानवरों से परिचित थे? इनमें से कौन-से जानवर पालतू रहे होंगे?

(3) अगर इस तरह के जानवर मोहनजोदड़ो के पास पाए जाते थे तो वहां का पर्यावरण कैसा रहा होगा?

(4) इसमें जो आदमी बना है वह कौन हो सकता है, देवता/राजा/गड़रिया?

(5) क्या वे अपनी बातों को लिखकर व्यक्त करते थे?

(6) इस मुहर का उपयोग कौन करता होगा? किस काम के लिए उपयोग करता होगा?

अपने समाज में मुहरों का उपयोग कौन करते हैं? (यहां आप मुहर का मतलब समझा सकते हैं – चिट्ठियां, पार्सले क्यों सील किये जाते हैं....)

इस मुहर के आधार पर क्या तुम बता सकते हो कि मोहनजोदड़ो में इनमें से कौन-कौन लोग रहते होंगे? पुजारी, व्यापारी, शिकारी, किसान, अधिकारी, औज़ार बनाने वाले कारीगर, पत्थर तराशने वाले कारीगर, चोर, लिपिक, हम्माल, लुहार, सुनार, बढ़ई, सैनिक ...?

दरअसल इस तरह की गतिविधियों से हम यह आशा नहीं करते कि छात्र मोहनजोदड़ो के बारे में पूर्ण और सही निष्कर्ष पर पहुंचें। इसके लिए एक मुहर का अध्ययन पर्याप्त नहीं होगा। लेकिन इसका उद्देश्य यह है कि छात्रों को उस प्रक्रिया का आभास हो जिससे इतिहासकार, इतिहास की खोज करते हैं, और वे अपनी आंखों व कानों को पैना बनाएं और कल्पना एवं चिंतन से गुज़रें। आखिर यही गुण एक अच्छे इतिहासकार को परिभाषित करता है।

खेती करने वाली चींटियां

चींटियां अपनी मनपसंद फफूंद की खेती करती हैं, सुनकर आश्चर्य होता है! लेकिन यह सच है कि चींटियों की कुछ जातियां अपना पेट भरने के लिए पत्तों पर फफूंद की खेती करती हैं। खेती कुछ इस तरह संभव हो पाती है – जब रानी चींटी को नई बस्ती बसानी होती है तब वह अपनी सेविकाओं (चीटियों) के साथ चल पड़ती है और साथ में फफूंद के बीज भी रख लेती है। नई बस्ती बसाने के साथ-साथ भोजन-पानी की समस्या भी तो होती है, इसलिए कुछ चींटियां अपने बच्चों को पीठ पर बिठाकर पत्तियां तोड़ने चल देती हैं क्योंकि इन पत्तियों पर ही फफूंद की खेती हो सकती है। चींटियां पत्तियों को तोड़कर अपनी पीठ पर लाद लेती हैं और पत्तियों पर अपने बच्चों को चढ़ा लेती हैं। पत्तियों पर बैठे बच्चे घूम-घूम कर इस बात का ध्यान रखते हैं कि पत्तियों पर कोई अन्य फफूंद न उग पाए और पत्तियां साफ सुथरी रहें।

फिर चींटियां पत्तियों को अपनी बस्ती के पास लाती हैं और इन्हें महीन पीसकर ज़मीन पर फैलाकर इन पर फफूंद के बीज बिखेर देती हैं। बीच-बीच में इन महीन टुकड़ों को अपनी लार से साफ करती हैं। चींटियां ऐसा इसलिए करती हैं क्योंकि उनकी लार में ऐसे रसायन होते हैं जो अन्य फफूंदों को उगने से रोकते हैं और पत्तियों पर चींटियों की मनपसंद फफूंद ही उग पाती है!

घनश्याम की नजर से . . .

मई का महीना आते ही निकल पड़े, दर्ज संख्या वृद्धि अभियान पर
इस साल पहली में 60 छात्र होना जरूरी नहीं तो एक मास्टर कम

हर 100 की जनसंख्या पर 15 बच्चे स्कूल में दर्ज होना जरूरी।
सरकारी आदेश
??? सरकार
अपने शहर में ऐसी प्राबलम नही पालक एडमिशन के लिए दांडी से हाथ जोड़ते हैं।

गुरुजी आए

जी, मास साब
तीन से ऊपर कित्ते मोड़ा-मोड़ी हैं?
माससाब चार
मैं नाम लिख रहा हूं
नइ माससाब, तीन को है
वा साल तुमने लिखो थो।

छोटी मोड़ी कित्ती की है?
अभी तो तीन साल की है
ठीक है, लिख लेता हूँ
मास्साब वो स्कूल नही आ पाएगी
कोई बात नहीं, नाम तो लिखा दे
लो मास्साब
ला, अंगूठा लगा
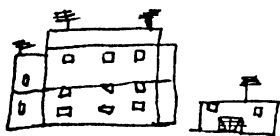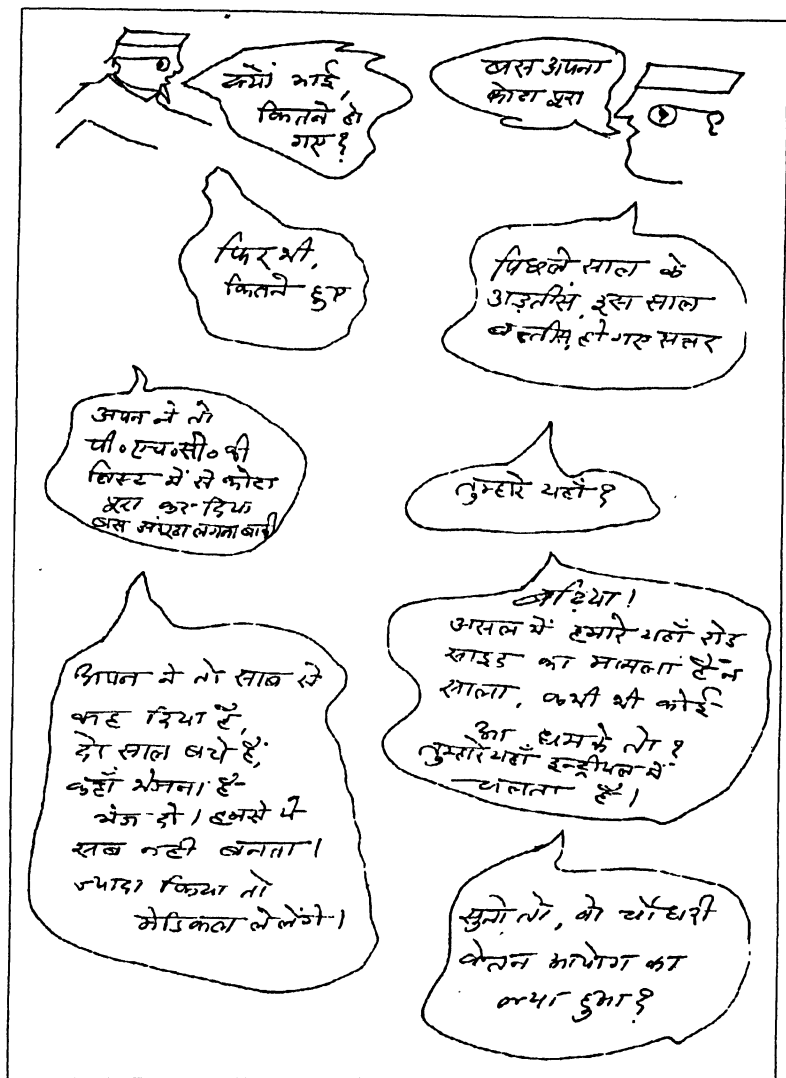
घनश्याम तिवारी एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के सदस्य हैं एवं बैतूल ज़िले के सुदूर इलाकों की शालाओं से कई वर्षों से जुड़े रहे हैं।

कहानी

शिवु और राक्षस की कहानी

- सत्यजीत रे

बच्चे कितने कल्पनाशील हो सकते हैं, कैसे थोड़ी-सी हवा मिलने पर ही वे अपना खुद का एक संसार बुन लेते हैं – इसका बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है मशहूर फिल्म-निर्देशक सत्यजीत रे ने।

"आ शिवु, इधर सुनते जा।"

शिवु जब स्कूल जाता था, फटिकदा अकसर उसे इसी तरह पुकारा करता था। फटिकदा का मतलब है पगला फटिक।

जयनारायण बाबू के मकान से आगे बढ़ने पर, चौराहे के पास, जहां आज दस बरसों से स्टीम-रोलर पड़ा हुआ है, ठीक उस स्टीम-रोलर के सामने फटिकदा की छोटी-सी टीन की चाल है। न जाने, फटिक आठों पहर ओसारे पर बैठकर खुट-खुट कौन-सा काम करता रहता है। शिवु को इतना ही मालूम है कि फटिकदा बहुत ही गरीब है। लोग कहा करते हैं, फटिक किसी ज़माने में खूब लिखा-पढ़ा करता था, इसीलिए वह पागल हो गया है। मगर जब शिवु फटिक की बातें सुनता है तो उसे लगता है, फटिक की तरह बुद्धिमान व्यक्ति कोई दूसरा नहीं है।

तब हां, यह सच है कि फटिक की ज़्यादातर बातें अजीब और पागलपन से भरी हुआ करती हैं, "कल चांद के आसपास का हिस्सा देखा था? बाईं ओर एक सींग जैसा कुछ निकला हुआ था। कुछ दिनों से कौवे अजीब सुर में पुकार रहे हैं। सुना है, सबको ठंड लग गई है।"

शिवु का मन हंसने को करता है, कभी-कभी ऊब भी महसूस होती है। जिन बातों का कोई उत्तर नहीं हो सकता, जिनका सचमुच कुछ अर्थ नहीं होता, उन बातों को सुनने का मतलब है समय नष्ट करना। यही वजह है कि कभी-कभी फटिक के पुकारने पर भी शिवु उसके पास नहीं जाता। "आज मेरे पास वक्त नहीं है फटिकदा, दूसरे दिन आऊंगा।" यह कहकर वह स्कूल की ओर चल देता है।

आज भी उसने सोचा था कि वह नहीं जाएगा, परन्तु फटिकदा ने आज बहुत ज़्यादा दबाव डाला।

लोग कहा करते हैं, फटिक किसी ज़माने में खूब लिखा-पढ़ा करता था, इसीलिए वह पागल हो गया है। मगर जब शिवु फटिक की बातें सुनता है तो उसे लगता है, फटिक की तरह बुद्धिमान व्यक्ति कोई दूसरा नहीं है।

"मैं तुझे जो कहना चाहता हूं, उसे न सुनेगा तो तेरी हानि होगी।"

शिवु सुन चुका है कि पागल आदमी बीच-बीच में ऐसी बातें बोला करता है जो सामान्य मनुष्य के लिए असंभव हैं। इसीलिए हानि के बारे में सोचते ही वह डरता हुआ फटिक की ओर चला गया।

हुक्के में डाब (कच्चा नारियल) का पानी भरते-भरते फटिक बोला, "जनार्दन बाबू को तूने ध्यान से देखा है?"

जनार्दन बाबू शिवु वगैरह के नए गणित-शिक्षक हैं। उनको आए अभी दस दिन ही हुए हैं।

शिवु बोला, "हर रोज़ तो उन्हें देखता हूं। आज भी पहले गणित का पीरियड है।"

फटिक ने अपनी जीभ से ऊब भरा एक शब्द निकाला– 'छिक्' और उसके बाद बोला, "अवलोकन और निरीक्षण एक ही चीज़ नहीं हुआ करते। बता तो, तूने जो बेल्ट लगाया है उसमें कितने सूराख़ हैं? तुम्हारी कमीज़ में कितने बटन हैं? बिना देखे बता तो सही।"

शिवु किसी प्रश्न का ठीक से जवाब नहीं दे सका।

फटिक बोला, "तेरी अपनी चीज़ है, तेरे बदन पर है पर तूने ध्यान नहीं दिया है। उसी तरह तूने जनार्दन बाबू को ध्यान से नहीं देखा है।"

"किस चीज़ पर ध्यान दूं?"

हुक्के पर चिलम रखकर गुड़-गुड़कर दो बार दम लेकर फटिक बोला, "जैसे दांत पर।"

"दांत?"

"हुं, दांत।"

"किस तरह ध्यान से देखूं? वे हंसते ही नहीं हैं।"

बात सही है। चाहे क्रोधी न हों, पर वैसा गंभीर शिक्षक शिवु वगैरह के स्कूल में नहीं है।

फटिक ने कहा, "ठीक है। अब जब वे हंसें तो सिर्फ उनके दांतों को ही गौर से

फटिक बोला, "अवलोकन और निरीक्षण एक ही चीज़ नहीं हुआ करते। बता तो, तूने जो बेल्ट लगाया है उसमें कितने सूराख़ हैं? तुम्हारी कमीज़ में कितने बटन हैं? बिना देखे बता तो सही।"

देखना। फिर आकर मुझे बताना कि तूने क्या देखा है।"

●

आश्चर्य की बात है। ठीक उसी दिन गणित के पीरियड में जनार्दन बाबू के लिए हंसने का एक कारण घटित हो गया।

ज्यामिति पढ़ाते-पढ़ाते उन्होंने शंकर से 'चतुर्भुज' का अर्थ पूछा और शंकर ने कहा, "विष्णु भगवान सर।" यह सुनते ही जनार्दन बाबू क्रोधपूर्ण हंस पड़े और शिवु की आंखें तत्काल उनके दांतों की ओर चली गईं।

तीसरे पहर घर लौटते हुए फटिक के घर के सामने पहुंचने पर शिवु ने फटिक को अपने घर में इमाम-दस्ते में कुछ कूटते हुए पाया। शिवु पर नज़र पड़ते ही फटिक बोला, "अगर यह औषध ठीक उतर गई तो देखना मैं बहुरूपिए की तरह रंग बदलने में समर्थ हो जाऊंगा।"

शिवु ने कहा, "फटिकदा, मैंने देख लिया?"

"क्या?"

"दांत।"

"ओ। कैसा मालूम हुआ?"

"यों सब ठीक है, पान का दाग है और दो दांत कुछ बड़े हैं।"

"कौन-कौन से?"

"बगल के। यहां के।" शिवु ने उंगली से बताया।

"हुं। वहां के दांत को क्या कहा जाता है, मालूम है?"

"क्या?"

"श्वदन्त। कुकुर-दांत।"

"ओ।"

"आदमी के जबड़े में इतना बड़ा

कुकुर-दांत इसके पहले कभी देखा है न?"

"शायद नहीं।"

"कुकुर-दांत किसका बड़ा होता है, जानते हो?"

"कुत्ते का।"

"ईडियट! सिर्फ कुत्ते का ही क्यों? सभी मांसाहारी जानवरों के श्वदंत बड़े होते हैं। उन्हीं दांतों से कच्चे मांस को नोच-नोचकर, हड्डियों को वे चबाकर खाते हैं। खासकर हिंसक जीव-जन्तु।"

"ओ।"

"और किसके श्वदंत बड़े होते हैं?"

शिवु आकाश-पाताल सोचने लगा। और किसका हो सकता है? आदमी और जीव-जन्तुओं के अलावा दांत वाले और होते ही क्या हैं?

फटिकदा ने अपने इमाम-दस्ते में एक अखरोट और एक चम्मच काला जीरा डालकर कहा, "तू जानता नहीं है? राक्षसों के हुआ करते हैं।"

"राक्षसों के! राक्षसों से जनार्दन बाबू का क्या संपर्क हो सकता है?" और, आजकल राक्षसों के बारे में चर्चा ही क्यों हो सकती है। इसका अस्तित्व तो दन्तकथाओं की पुस्तकों के पृष्ठों में ही है। राक्षसों के बारे में शिवु ने ढेरों कहानियां पढ़ी हैं : उनके दांत मूली की तरह होते हैं, सूप की तरह ....

शिवु चौंक पड़ा। सूप की तरह पीठ! जनार्दन बाबू की पीठ सीधी नहीं है। कैसी तो कुबड़े के जैसी, सूप की तरह। शिवु ने किसी से सुना था कि जनार्दन बाबू वात के मरीज़ हैं, इसलिए पीठ सीधी करके चल नहीं पाते।

मूली की तरह दांत, सूप की तरह पीठ और? और पता नहीं राक्षसों के क्या-क्या होते हैं।

और गेंदे की तरह आंखें।

जनार्दन बाबू की आंखों को शिवु ने ध्यान से देखा है? नहीं , नहीं देखा है। ध्यान से देखने की संभावना नहीं है।

वजह यह कि जनार्दन बाबू चश्मा लगाते हैं और उनके चश्मे के कांच का रंग मटमैला है। उनकी आंखों का रंग लाल या बैंगनी या कि हरा है, यह समझना नामुमकिन है।

शिवु गणित में तेज़ है। लघुत्तम समापवर्त्तक, महत्तम समापवर्त्तक, भिन्न – किसी को हल करने में वह असमर्थ नहीं रहता है। कम से कम कुछ दिन पहले तक उसके साथ यही बात थी! प्यारीचरण बाबू जब गणित-शिक्षक थे, उसे हर रोज़ दस में से दस अंक प्राप्त होते थे। मगर दो दिनों से शिवु थोड़ी बहुत उलझन महसूस कर रहा है। कल उसने मन के ज़ोर से स्वयं को बहुत कुछ संभाल लिया था। सुबह नींद टूटते ही उसने मन ही मन कहना शुरू किया था कि वे राक्षस नहीं हो सकते। आदमी राक्षस नहीं हुआ करते। चाहे पहले होते हों, मगर अब नहीं हुआ करते। जनार्दन बाबू राक्षस नहीं हैं, वे

मनुष्य हैं। क्लास में भी बैठा-बैठा वह इन्हीं बातों को दुहरा रहा था। तभी एक बात हो गई।

ब्लैक बोर्ड पर एक हिसाब लिखकर जनार्दन बाबू अनमने जैसे हो गए और अपना चश्मा उतारकर उसे चादर के छोर से पोंछने लगे। और ठीक उसी वक्त शिवु से उनकी आंखें टकरा गयीं।

शिवु ने जो कुछ देखा उससे उसके हाथ-पांव ठंडे पड़ गए।

जनार्दन बाबू की आंखों की सफेदी– सफेद रंग की नहीं, चटख लाल रंग की है – पल्टु की पेंसिल की तरह लाल।

यह देखने के बाद शिवु बेचैन हो उठा।

●

दो दिनों से शिवु थोड़ी बहुत उलझन महसूस कर रहा है। सुबह नींद टूटते ही उसने मन ही मन कहना शुरू किया था कि वे राक्षस नहीं हो सकते। आदमी राक्षस नहीं हुआ करते। चाहे पहले होते हों, मगर अब नहीं हुआ करते।

यों शिवु छुट्टी होने पर सीधे घर नहीं जाता है। वह शुरू में मित्तिर के बगीचे में जाता है। छतिवन के पेड़ के तले लाजवंती की जो लताएं हैं, उन्हें वह अपनी उंगलियों से छेड़-छेड़कर नींद में मशगूल कर देता है। उसके बाद वह सरलदीघि के किनारे जाता है। तालाब के पानी में ठीकरे फेंक कर वह झींझरी खेलता है। उसका ठीकरा अगर सात बार से ज़्यादा फलांगता हुआ उस पार पहुंच सके तो वह हरेन का रेकार्ड तोड़ सकेगा।

सरलदीघि के बाद ईंट की भट्टियों का मैदान है। वहां वह सजी हुई ईंटों की छल्ली पर दसेक मिनट तक व्यायाम करने के बाद कुहनी के बल चलता हुआ मैदान पार करता है और उसके बाद मकान के खिड़कीनुमा दरवाज़े के पास आता है।

आज मित्तिर के बगीचे में आने पर उसे लाजवंती की लताएं झुकी हुई मिलीं। ऐसी बात क्यों हुई? लताओं पर से कोई चहल-कदमी करते हुए गया है? इस रास्ते कोई तो आता-जाता नहीं है!

अब शिवु को बगीचे में रहने की इच्छा नहीं हुई। एक अजीब सन्नाटा रेंग रहा है। आज जैसे जल्दी-जल्दी शाम घिरती जा रही है। कौए क्या रोज़ इसी तरह चिल्लाते हैं या किसी वजह से वे डर गए हैं? सरलदीघि के किनारे हाथ से किताबें नीचे उतारकर रखते ही शिवु ने महसूस किया आज ठीकरे उछालना ठीक नहीं है। आज उसे ज़्यादा देर तक बाहर नहीं रहना चाहिए। अगर रहेगा तो हो सकता है, विपत्ति का सामना करना पड़े।

एक विशाल मछली जैसी किसी चीज़ ने पोखर के बीच छलांग लगाकर गहरे पानी में डुबकी लगाई।

शिवु ने किताबें उठा लीं। उस पार के बरगद पर झूलते चमगादड़ों ने पेड़ को स्याह जैसा बना डाला है। थोड़ी देर के बाद उनके उड़ने का समय आएगा। फटिकदा ने उससे कहा है कि चमगादड़ों के सिर में खून न रहने का कारण वह एक दिन उसे बता देगा।

जामुन के पीछे की झाड़ी से एक तक्षक की आवाज़ आयी, "खोक्! खोक्! खोक्!"

शिवु अपने घर की ओर रवाना हुआ।

ईंटों के भट्ठे के पास आते ही उसकी नज़र जनार्दन बाबू पर पड़ी। ईंटों की छल्ली से बीसेक हाथ की दूरी पर एक बेर का पेड़ है। उसके पास दो बकरियां खेल रही हैं और जनार्दन बाबू अपने हाथों में किताब और छाता थामे उनका खेल देख रहे हैं।

शिवु सांस रोक कर चुपचाप ईंट की एक छल्ली पर चढ़ गया और दो ईंटों की फांक से अपनी गरदन को यथासंभव आगे बढ़ाकर, जनार्दन बाबू को देखने लगा।

उसने देखा, बकरियों की ओर ताकते-ताकते जनार्दन बाबू ने दो बार अपने दाहिने हाथ को उलटकर उससे होठों के नीचे के हिस्से को सहलाया।

जीभ से लार टपके बिना कोई आदमी इस तरह अपने होंठों के नीचे का हिस्सा नहीं पोंछता है।

उसके बाद शिवु ने देखा, जनार्दन बाबू उस प्रकार नीचे की ओर झुक पड़े, जिस तरह कि लोग आक्रमण करने की स्थिति में किया करते हैं।

फिर एकाएक हाथ से किताब और छाता फेंक कर एक ही झपट्टे में बकरी के एक बच्चे को पकड़कर हाथों में उठा लिया। और, उसी क्षण शिवु को बकरी के बच्चे की चीख और जनार्दन बाबू की हंसी सुनाई पड़ी।

शिवु ने एक ही छलांग में ईंट की छल्ली को पार किया। दूसरी छलांग में वह एक दूसरी छल्ली को ज्यों ही फलांगना चाहता था कि फिसलकर धड़ाम से गिर पड़ा।

"वहां कौन है?"

किसी तरह शिवु ने जब अपने आपको संभाला तो देखा, जनार्दन बाबू बकरी के बच्चे को नीचे रखकर उसकी ओर आ रहे हैं।

"कौन हो? शिवराम? चोट लग गई? तुम वहां क्या कर रहे थे?" शिवु ने बोलने की चेष्टा की, पर उसका गला सूख गया था। उसे इच्छा हो रही थी कि बदले में वह जनार्दन बाबू से पूछे कि आप वहां क्या कर रहे थे; कि आपके हाथ में बकरी का बच्चा क्यों था, कि आपकी जीभ से लार क्यों टपक रही थी।

जनार्दन बाबू शिवु के पास आये और बोले, "लो, मेरा हाथ पकड़ो।"

बिना उनका हाथ पकड़े शिवु किसी तरह उठकर खड़ा हुआ।

"तुम्हारा घर निकट ही है न?"

"हां सर।"

"वही लाल जैसा मकान?"

"हां सर।"

"ओ।"

"मैं चल रहा हूं, सर।"

"वह क्या है – खून?"

शिवु ने देखा, उसका घुटना छिल गया है और थोड़ा-सा रक्त चू कर नीचे गिर पड़ा है। जनार्दन बाबू उसी रक्त की ओर ताक रहे हैं और उनके चश्मे के कांच आग की तरह चमक रहे हैं।

"मैं चल रहा हूं, सर।"

शिवु ने किसी तरह ज़मीन पर से अपनी किताबें उठायीं।

"सुनो, शिवराम।"

जनार्दन बाबू ने आगे बढ़कर शिवु की पीठ पर अपना हाथ रखा। शिवु के कलेजे पर जैसे हथौड़े की चोटें पड़ने लगीं।

"अच्छा ही हुआ कि तुम एकान्त में मिल गए। सोचा था, तुमसे एक बात पूछूं। गणित में कुछ कठिनाई महसूस करते हो? आज इतने आसान सवालों को भी तुम हल नहीं कर सके। अगर तुम्हें कोई कठिनाई महसूस हो तो छुट्टी के बाद मेरे घर पर आया करो, मैं तुम्हें समझा दिया करूंगा। गणित ऐसा विषय है जिसमें

पूर्णांक प्राप्त किए जा सकते हैं। मेरे घर पर आओगे न?"

शिवु किसी तरह दो कदम पीछे हटा। जनार्दन बाबू का हाथ अपनी पीठ से अलग कर थूक निगलते हुए बोला, "नहीं सर। मैं खुद हल कर लूंगा, सर। कल ठीक हो जाएगा।"

"ठीक है। तब हां, कठिनाई हो तो बताना। और एक बात। तुम मुझसे इतना डरते क्यों हो? मैं क्या राक्षस हूं जो दांत से काटकर खा डालूंगा? अयं? ह...ह...ह...ह..."

●

ईंट की भट्टी से एक ही दौड़ में घर लौट आने के बाद शिवु ने देखा, सामने के मकान में हीरेन ताऊ आए हुए हैं। हीरेन ताऊ कलकत्ते में रहते हैं। वे मछली पकड़ने के शौकीन हैं। बाबूजी और हीरेन ताऊजी प्रातः हर रविवार सरलदीघि (छोटा पोखर) में मछली पकड़ने जाते हैं। अब की भी शायद वे लोग जाएंगे, क्योंकि शिवु ने देखा, चींटी के अंडों का चारा बनाया गया है।

शिवु ने यह भी देखा कि अब की हीरेन ताऊजी बंदूक भी लेकर आए हैं। सुनने में आया है, बाबूजी और हीरेन ताऊजी सोनापुर की झील में चाहा का शिकार करने जाएंगे। बाबूजी भी बंदूक चलाते हैं मगर वे हीरेन ताऊजी की तरह निशानेबाज़ नहीं हैं।

रात में खा-पीकर शिवु शयन-कक्ष में गया और सोचने लगा। जनार्दन बाबू के राक्षस होने में अब उसे किसी प्रकार का संदेह न रह गया था। भाग्यवश फटिकदा ने उसे होशियार कर दिया था। वरना आज हो सकता है ईंट की भट्टी में ही...। इसके बाद शिवु सोच नहीं सका।

बाहर खुली चांदनी फैली है। भजु के घर तक साफ-साफ दिख रहा है। शिवु की परीक्षा निकट है, अतः वह रात में जल्दी सो जाता है और भोर में उठकर पढ़ता है। जब तक वह रोशनी नहीं बुझा देता, उसकी आंखों में नींद उतरती नहीं है। इतना ज़रूर है कि अगर चांदनी रात न होती तो वह रोशनी जलाकर रखता, क्योंकि ऐसा न करता तो सम्भवतः भय से उसे नींद ही न आती। बाबूजी और हीरेन ताऊजी अभी खाने बैठे हैं, मां उन्हें खिला रही है।

खिड़की के बाहर, चांदनी के प्रकाश में चमकते बेल के वृक्ष की ओर ताकते-ताकते शिवु की आंखों में नींद उतर आई थी। तभी किसी चीज़ पर दृष्टि पड़ते ही उसकी नींद भाग खड़ी हुई और उसके रोंगटे खड़े हो गए।

दूर से एक आदमी उसकी खिड़की की ही ओर चला आ रहा है।

वह आदमी थोड़ा कूबड़ा है और उसकी आंखों पर चश्मा है। चश्मे के कांच चांदनी में चमक रहे हैं।

जनार्दन बाबू!

शिवु का गला फिर से सूख गया।

जनार्दन बाबू ने दबे पांवों बेल के वृक्ष को पार किया और आहिस्ता-आहिस्ता वे खिड़की के बिलकुल निकट आकर खड़े हो गए। शिवु ने अपनी बगल के तकिए को ज़ोरों से बांहों में जकड़ लिया।

कुछ देर तक इधर-उधर ताकने के बाद जनार्दन बाबू ने झिझक के साथ कहा, "शिंवराम हैं जीं?"

यह क्या? उनके स्वर में अनुनासिक भाव क्यों है? रात में उनका राक्षसपन और भी तीव्र हो जाता है?

"शिंवराम!" दूसरी बार पुकार आई।

अब शिवु की मां ने ओसारे पर से कहा, "ए शिवु बाहर कोई पुकार रहा है। तू सो गया क्या"

जनार्दन बाबू खिड़की से ओझल हो गए। कुछ देर के बाद उनकी आवाज़ सुनाई पड़ी, "शिवराम अपनी ज्यामिति की किताब ईंट की भट्टी पर छोड़ आया था। कल रविवार है, स्कूल में उससे मुलाकात नहीं होगी। आज सुबह उठकर उसे पढ़ना है, इसीलिए....."

उसके बाद फुसफुसाकर क्या कहा, शिवु को सुनाई नहीं पड़ा । आखिर में सिर्फ बाबूजी की बातें सुनाई दीं, "हां, अगर आपका यह कहना है तो अच्छा ही है। न होगा तो आपके घर पर ही भेज दिया करूंगा। ...हां, कल से।"

शिवु के न तो होंठ ही थरथराए और न गले से ही आवाज़ निकली, लेकिन उसका मन चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा, "नहीं, नहीं, नहीं, मैं नहीं जाऊंगा, किसी भी हालत में नहीं जाऊंगा। आप लोगों को कुछ भी मालूम नहीं है। वे राक्षस हैं! जाते ही मुझे खा जायेंगे।"

दूसरे दिन रविवार होने पर भी शिवु सुबह-सुबह फटिकदा के घर पर पहुंचा। उसे फटिकदा से बहुत-कुछ कहना है।

उसको देखकर फटिकदा बोला, "स्वागतम्! तेरे घर के पास नागफनी का पौधा है न? दाव (हंसिया) से थोड़ा-सा काटकर मुझे दे जाना। दिमाग में एक तरह की नई रसोई पकाने की बात आई है।"

शिवु ने भर्राई आवाज़ में कहा, "फटिकदा!"

" क्या?"

"तुमने बताया था कि जनार्दन बाबू राक्षस हैं..."

"किसने कहा है?"

"तुम्हीं ने तो कहा था।"

"बिलकुल नहीं। तुमने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया।"

"कैसे?"

"मैंने तुझसे कहा था कि जनार्दन बाबू के दांतों को गौर से देखना। उसके बाद तूने बताया कि उनके श्वदंत बड़े-बड़े हैं। मैंने कहा, वैसे कुकुर-दांत राक्षसों के भी होते हैं। इसका मतलब क्या यह है कि जनार्दन बाबू राक्षस हैं?"

"फिर वे राक्षस नहीं हैं?"

"ऐसा मैंने नहीं कहा था।"

"फिर?"

फटिकदा ओसारे पर खड़ा हो गया और उसने ज़ोरों से एक उबासी ली। फिर बोला, "आज तेरे ताऊजी पर नज़र पड़ी। लगता है, मछली पकड़ने आए हैं। मैक्कडी साहब ने बंसी से एक बार शेर पकड़ा था। उसकी कहानी मालूम है?"

शिवु ने मरियल की तरह कहा, "फटिकदा, तुम क्या अंट-संट बक रहे हो? जनार्दन बाबू सचमुच ही राक्षस हैं। मैं जानता हूं कि वे राक्षस हैं। मैंने बहुत कुछ देखा-सुना है।"

उसके बाद शिवु ने फटिक को पिछले दो दिनों की घटनाओं के बारे में बताया। सब कुछ सुनने के बाद फटिक ने गंभीरता के साथ सिर हिलाते हुए कहा, "हम्! तो तू इसके संबंध में क्या करने जा रहा है?"

"तुम्हीं बता दो फटिकदा। तुम्हें तो सब मालूम ही है।"

अपना सिर झुकाकर फटिक सोचने लगा।

मौका देखकर शिवु ने कहा, "अभी मेरे घर पर बंदूक है।"

फटिक ने दांत पीसकर कहा, "बलिहारी है तुम्हारी बुद्धि की! बंदूक रहने से क्या होगा? बंदूक से राक्षस को मारेगा? गोली घूमकर चली आएगी और जो गोली चलायेगा, उसी को आकर लगेगी।"

"ऐसा?"

"जी हां? बेवकूफ कहीं का।"

"फिर?" शिवु की आवाज़ धीमी होती जा रही थी। "फिर क्या होगा फटिकदा? आज से मुझे बाबूजी...."

"ज़्यादा मत बक। बड़-बड़ करके मेरे कान का परदा फाड़ रहा है।"

दो मिनट तक सोचने के बाद फटिक शिवु की ओर मुड़कर बोला, "जाना ही पड़ेगा।"

"कहां?"

"जनार्दन बाबू के घर पर।"

"क्यों?"

"उनकी जन्म-कुंडली देखनी है। मैं अभी निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकता हूं। जन्म-कुंडली देखने पर सब पता चल जाएगा। पेटी-बक्सा उलटने-पुलटने से जन्म-कुंडली मिल ही जाएगी।"

"मगर..."

"तू चुप रह। पहले योजना सुन ले। हम दोनों दोपहर में जाएंगे। आज रविवार है,

---

मैंने तुझसे कहा था कि जनार्दन बाबू के दांतों को गौर से देखना। तूने बताया कि उनके श्वदंत बड़े-बड़े हैं। मैंने कहा, वैसे कुकुर-दांत राक्षसों के भी होते हैं। इसका मतलब क्या यह है कि जनार्दन बाबू राक्षस हैं?

वे घर पर ही रहेंगे। तू मकान के पिछवाड़े में जाकर जनार्दन बाबू को पुकारना। जब बाहर निकलें तो कहना, गणित समझने के लिए आया हूं। उसके बाद दो-चार आलतू-फालतू बातें कर उन्हें अटकाकर रखना। मैं उसी मौके पर मकान के सामने की तरफ से अन्दर जाकर जन्म-कुंडली ले आऊंगा। फिर तू इधर से भागना और मैं उधर से भागूंगा। बस।"

"उसके बाद?" शिवु को योजना बहुत ही अच्छी लगी हो, बात ऐसी नहीं थी। लेकिन फटिक पर निर्भर करने के अलावा दूसरा कोई चारा नहीं था।

"तीसरे पहर तुझे फिर से मेरे घर पर आना है। तब तक जन्म-कुंडली देखकर, पुरानी कुछ पोथियों को उलट-पलटकर मैं बिलकुर तैयार रहूंगा। अगर देखकर पता चला कि जनार्दन बाबू सचमुच राक्षस हैं तो फिर उसका उपाय मैं जानता हूं। तू घबराना मत। और अगर देखकर पता चला कि राक्षस नहीं हैं तो फिर चिन्ता की कोई बात ही नहीं।"

फटिकदा ने बताया था कि दोपहर में बाहर निकलेंगे। यही वजह है कि खा-पीकर शिवु फटिक के घर पर आया। पांचेक मिनट के बाद फटिकदा ने बाहर आकर कहा, "मेरी बिल्ली को सुंघनी की आदत लग गई है। झंझटों की क्या कोई कमी है?" शिवु ने देखा, फटिक के हाथों में एक जोड़ा चमड़े का फटा दस्ताना और साइकिल की एक घंटी है। घंटी को शिवु के हाथ में थमाते हुए कहा, "इसे तू रख ले। मुसीबत में फंसने पर इसे बजा देना। मैं आकर तेरी रक्षा करूंगा।"

पूरबी मोहल्ले के अंतिम छोर पर, दोल-गोविन्द के मकान के बाद ही जनार्दन मास्टर का मकान है। वे अकेले ही रहते हैं, घर में नौकर तक नहीं रखते। बाहर से यह समझना मुश्किल है कि इस घर में कोई राक्षस रहता है।

जब रास्ता थोड़ा ही बाकी बच गया, शिवु और फटिकदा अलग-अलग हो गए।

मकान के पिछवाड़े में पहुंचने के बाद शिवु को लगा, उसका गला फिर से सूखता जा रहा है। जनार्दन बाबू को पुकारने के वक्त अगर उसके गले से आवाज़ न निकले तो?

मकान के पिछवाड़े एक दीवार है, उस दीवार में एक दरवाज़ा और दरवाज़े के पास ही अमरूद का एक पेड़ था। उस पेड़ के आसपास झाड़-झंखाड़ों का जंगल है।

शिवु दबे पांवों आगे बढ़ता गया। अब वह देर करेगा तो फटिकदा की सारी योजना चौपट हो जाएगी।

थोड़ी-सी और हिम्मत बटोरने के लिए शिवु अमरूद के पेड़ पर हाथ रखकर उसके सहारे टिकने जा रहा था और 'मास्टर-साहब' कहकर पुकारने जा रहा था कि तभी 'किचमिच' आवाज़ सुनकर उसने नीचे की ओर देखा और कालभैरवी की एक लता के झुरमुट में एक गिरगिट को जाते हुए देखा। गिरगिट जिस रास्ते

से गुज़रा, उसकी बगल में सफेद जैसी कोई चीज़ पड़ी हुई दिखी।

बांस की एक कमाची से झुरमुट में सूराख करते ही सिहर उठा! यह तो हड्डी है। जानवर की हड्डी। किस तरह के जानवर की? बिल्ली की या कुत्ते की या कि बकरे की?

"वहां क्या देख रहे हो शिवराम?"

शिवु की रीढ़ की हड्डी में बिजली खेल गई। उसने पीछे की ओर मुड़कर देखा और जनार्दन बाबू को खिड़की के पल्लों को हटाकर, गरदन बढ़ाए अपनी ओर अजीब निगाहों से ताकते हुए पाया।

"कुछ खो गया है?"

"नहीं सर...मैं मैं...."

"तुम क्या मेरे पास ही आ रहे थे? फिर पिछवाड़े के दरवाज़े से क्यों? आओ अन्दर चले आओ।"

पीछे की ओर मुड़ते ही शिवु ने पाया, उसका एक पैर लता में फंस गया है।

"कल से मुझे सरदी-बुखार हो गया है। रात में मैं तुम्हारे घर पर गया था न। तब तुम सोए थे।"

शिवु इतनी जल्दी-जल्दी भाग नहीं पाएगा। उधर फटिकदा का काम खत्म हो ही नहीं पाएगा। वह बीच में ही पकड़ लिया जाएगा। एक बार मन हुआ कि घंटी बजाए। फिर मन में हुआ कि अभी वह किसी विपत्ति में फंसा नहीं है। हो सकता है कि फटिकदा बिगड़ने लगें।

"तुम झुककर क्या देख रहे थे?"

शिवु को तत्काल कोई उत्तर सूझ नहीं पड़ा। जनार्दन बाबू ने आगे बढ़कर कहा, "बड़ी ही गंदी जगह है। उधर न जाना ही अच्छा है। न जाने कुत्ता कहां से मांस लाकर हड्डी वहां फेंक देता है। सोचा उसे एक बार डांटूंगा, मगर हो नहीं पाता है। मुझे जीव-जन्तु बहुत अच्छे लगते हैं न!"

जनार्दन बाबू ने अपने हाथ के पिछले हिस्से से होंठों के नीचे का हिस्सा पोंछा।

"तुम अन्दर आओ शिवु...तुम्हारा गणित...."

अब देरी नहीं करनी चाहिए। "आज नहीं कल आऊंगा," यह कहकर शिवु ने मुड़कर दौड़ लगाई और एक ही दौड़ में मैदान, रास्ता, नीलू का मकान, कार्तिक का मकान, हरेन का मकान – सबको पार कर वह साहा बाबू के गिरे मकान के ओसारे पर आकर हांफने लगा। आज की बात उसे कभी नहीं भूलेगी। उसमें इतनी हिम्मत हो सकती है, उसने स्वयं कभी इस पर सोचा नहीं था।

●

तीसरा पहर आते न आते शिवु फटिक के मकान पर आकर हाज़िर हुआ। पता नहीं, फटिकदा को उसकी जन्म-कुंडली में क्या मिला होगा।

शिवु पर नज़र पड़ते ही फटिक ने सिर हिलाया।

"सब गड़बड़ हो गया।"

"क्यों फटिकदा? जन्म-कुंडली नहीं मिली?"

"मिल गई है। तेरे गणित के शिक्षक राक्षस हैं, इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है। वे राक्षस ही नहीं, बल्कि पिरिन्डी राक्षस हैं। मामला गंभीर है। साढ़े तीन सौ पुरखों पूर्व ये लोग पूरे राक्षस थे। मगर इनमें तेज़ी इतनी है कि अब भी इनमें दो-चार आधे राक्षस के रूप में मिल जाते हैं। अब किसी भी देश में, पूरा राक्षस मिलता नहीं है। है तो सिर्फ अफ्रीका के किसी इलाके में, ब्राज़ील और बोर्नियो वगैरह स्थानों में। हां, आधा राक्षस अब भी यदा-कदा सभ्य देशों में मिल जाता है। जनार्दन बाबू भी उसी किस्म के हैं।"

"फिर गड़बड़ क्यों?" शिवु की आवाज़ थरथरा उठी। अगर फटिकदा हार मान लें तो उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा जाएगा।

"तुमने सबेरे बताया था कि तुम उपाय जानते हो?"

"मैं न जानता होऊं, ऐसी कोई चीज़ नहीं है।"

"फिर?"

फटिकदा कुछ गंभीर हो गया। फिर बोला, "मछली के पेट में क्या रहता है?"

लो, फटिकदा फिर पागलपन करने लगा! शिवु ने रोनी-रोनी-सी आवाज़ में कहा, "फटिकदा, राक्षस की बातें चल रही थीं और तुम मछली की बात ले आए।"

"क्या रहता है?" फटिक ने गरजते हुए कहा।

'पो-पोटा*?" फटिकदा की आवाज़ सुनकर शिवु बेहद डर गया था।

"तेरा सिर! इतनी कम विद्या से तू बगुले का बकलस भी लगा न पाएगा। ढाई वर्ष की उम्र में मैंने एक श्लोक लिखा था जो अब भी याद है :

नर या बंदर या जितने भी जीव जगत के
हृत् पिंडों में प्राण रहा करते हैं सबके।
मत्स्य-उदर में प्राण बसा करते दनुजों के
वे न सहज ही अतः मरा करते मनुजों से।"

बात तो ठीक है। शिवु ने बहुत-सी किताबों में पढ़ा है कि राक्षसों के प्राण मछलियों के पेट में रहते हैं। उसे यह बात याद रखनी चाहिए थी।

श्लोक को दुहराते हुए फटिक ने कहा, "दोपहर जब तू मास्टर के घर पर गया तो जनार्दन राक्षस को किस हालत में पाया?"

"बताया कि उन्हें सरदी-बुखार है।"

"होगा ही। फटिक की आंखें चमकने लगीं। होगा नहीं? प्राण खतरे में जो है! जैसे ही कतला मछली बंसी से पकड़ी गई है, वैसे ही बुखार आ गया। यह तो होगा ही।"

उसके बाद शिवु की ओर बढ़कर, उसकी कमीज़ के अगले हिस्से को एकाएक मुट्ठी में कसते हुए बोला, "हो सकता है, अभी भी वक्त है। तेरे ताऊजी आधा घंटा पहले सरलदीघि से उस आधे मन की कतला मछली पकड़कर घर लौटे हैं। देखते ही मुझे अन्दाज़ लग गया कि उसके पेट में ही जनार्दन राक्षस के प्राण

---

* मछली के पेट की थैली

हैं। अभी बुखार के बारे में सुनकर मेरा विश्वास पक्का हो गया। उस मछली को चीर कर देखना होगा।"

"मगर यह कैसे संभव हो पाएगा फटिकदा?"

"आसानी से। तुझ पर ही निर्भर है। और अगर यह न हो पाया तो तू किसी मुसीबत में फंस सकता है, इसकी कल्पना करते ही मेरा पसीना छूटने लगता है।"

एक घंटे के बाद शिवु सरलदीघि की आधे मन की उस कतला मछली को एक डोरी से बांधकर, घसीटता हुआ फटिक के मकान के सामने आया। थकावट के मारे वह हांफ रहा था। फटिक ने कहा, "किसी को पता नहीं है न?"

"नहीं," शिवु ने कहा, "बाबूजी नहा रहे थे, ताऊजी श्रीनिवास को डांट-फटकार रहे थे और मां सांझ-बाती में व्यस्त थी। नारियल की रस्सी खोजने में देर हो गई। और उफ, इतनी भारी है!"

"परवाह नहीं। पेशियां सुदृढ़ होंगी।"

फटिक मछली लेकर अन्दर चला गया। शिवु ने सोचा, फटिकदा में आश्चर्यजनक बुद्धि और ज्ञान है। उसकी वजह से इस बार शिवु के प्राणों की रक्षा हुई। हे भगवान्! ऐसा करना कि जनार्दन राक्षस के प्राण मछली के पेट में ही मिले।

दस मिनटों के बाद फटिक बाहर निकला और शिवु की ओर हाथ बढ़ाकर बोला, "ले। इसे कभी अपने से अलग मत करना। रात में तकिये के नीचे रखकर सोना। स्कूल जाते वक्त अपनी पैंट की बाईं जेब में रख लेना। अगर यह तेरे हाथ में रहेगा तो राक्षस केंचुए की तरह असहाय रहेगा। और इसे इमाम-दस्ते में कूटते ही राक्षस की जान खत्म हो जाएगी। मेरी राय में कूटने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी, हाथ में रख लेना ही काफी है, क्योंकि बहुत बार ऐसा देखने में आया है कि पिरिन्डी राक्षस चौवन वर्ष की उम्र के बाद पूरा आदमी हो गया है। तेरे जनार्दन मास्टर की उम्र अभी तिरपन वर्ष, ग्यारह महीना, छब्बीस दिन है।"

शिवु ने अब साहस बटोरकर अपनी हथेली की ओर देखा – भीगी मिसरी के दाने-सा पत्थर अभी-अभी उगे चांद के प्रकाश में झिलमिला रहा है।

पत्थर को जेब के हवाले कर शिवु घर की तरफ मुड़ा। पीछे से फटिकदा ने कहा, "तेरे हाथ से मछली की गंध आ रही है। अच्छी तरह से धो लेना। और बेवकूफ जैसा बना रहना वरना तू पकड़ में आ जाएगा।"

●

दूसरे दिन गणित के पीरियड में कक्षा के अन्दर जाने के ठीक पहले जनार्दन बाबू को छींक आई, उसके बाद चौखट से ठोकर लगने के कारण उनके जूते का सोल फट गया। उस वक्त शिवु का बायां हाथ उसकी पैंट के अन्दर था।

क्लास खत्म होने पर शिवु को बहुत दिनों के बाद दस अंक प्राप्त हुए।

(फिल्म निर्देशन के अलावा सत्यजीत रे ने बच्चों के लिए फंतासी और रोमांचकारी साहित्य का सृजन भी किया है।)

सांपों से डर क्यों?

पुस्तक का नामः "सांप और हम"
लेखकः ज़य और रोम व्हिटेकर
अनुवादः हनुमानसिंह पंवार
प्रकाशक : नेशनल बुक ट्रस्ट, ए-5, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110016
पृष्ठः 64, कीमत 5.00 रुपए, प्रथम संस्करण, 1987.

बातचीत में कहीं सांप का प्रसंग आ जाए तो फिर किस्से-कहानियों का अंत नहीं होता। आमतौर पर समाज में सांपों को लेकर अनेक धारणाएं व्याप्त हैं, पर उनमें से अधिकांश बिना सिर-पैर की होती हैं, मसलन सांप दूध पीते हैं, उड़ने वाले सांप होते हैं, सांप बदला लेते हैं, दो-मुंहा सांप के चाट लेने से कुष्ठ रोग हो जाता है, सभी सांप विषैले होते हैं आदि, आदि।

ऐसी धारणाओं का भंडाफोड़ करने तथा सांपों के बारे में वैज्ञानिक जानकारी को सरलीकृत करके ज़य और रोम व्हिटेकर ने यह पुस्तक लिखी है। रोम व्हिटेकर उस व्यक्ति का नाम है जिसने सांपों पर खूब अध्ययन किया है। रोम और उसके साथियों ने दक्षिण भारत में तमिलनाडु की इरूला जनजाति के बीच कोई दस साल तक काम किया। इरूला जनजाति सांपों को पकड़कर, उनकी चमड़ी निकालकर बेचा करती थी। पर यह काम वे औरों के इशारों पर करते थे। उस इलाके में चमड़ी की तस्करी करने वाला संगठित गिरोह था जो इरूला लोगों को तो केवल मज़दूरी ही देता था।

रोम व्हिटेकर ने इरूला जनजाति के साथ काम करके सांपों को पकड़ने की उनकी जादुई प्रतिभा का इस्तेमाल एक बिल्कुल ही फर्क दिशा में करवाया। अब भी वे सांप पकड़ते तो थे पर उनको मारते नहीं बल्कि विष दुहकर फिर से जंगल में छोड़ देते। यह विष दवाईयों आदि के उत्पादन के लिए बहुमूल्य है।

रोम के इरूला जनजाति के साथ काम करने का मकसद न सिर्फ सांपों की हत्या को रोकना है, बल्कि उनकी सांपों को पकड़ने और पहचानने की दक्षता को एक रचनात्मक अन्जाम देना भी है। साथ ही रोम ने मद्रास में एक स्नेक-पार्क भी बनाया जहां दूर-दूर से लोग-बाग सांपों को देखने आते हैं, उनके बारे में जानने आते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखकों द्वारा सांपों पर किए गए काम के दौरान प्राप्त अनुभवों की भी झलक मिलती है। कव्हर समेत 64 पेज की इस पुस्तक में सांपों के व्यवहार, रहन-सहन, आकार-प्रकार, भोजन, इनके बारे में फैले अंधविश्वास, उनका आर्थिक महत्व तथा सांपों की खाल की तस्करी से जुड़े मुद्दों पर रोशनी डाली गई है। पुस्तक की शुरुआत में ही कहा गया है कि सांप प्रकृति का एक लुभावना जीव है। इनके विविध रंग, चाल-ढाल और रहस्यपूर्ण आदतें इन्हें अन्य जीवों से एकदम अलग कर देती हैं।

मनुष्यों में सांपों को लेकर जो अंधविश्वास व्याप्त हैं उनको लेखकद्वय ने हास्यास्पद बताया है। रोम कहते हैं कि मद्रास स्थित सांपों के पार्क में आने वाले बहुत से लोग सांपों को पिलाने के लिए दूध लाते हैं जिसे लेकर मैं अपने कर्मचारियों को कॉफी बनाने के लिए दे देता हूं। उन्होंने आगे इस धारणा का खंडन कुछ इस तरह किया कि दूध सांप का प्राकृतिक भोजन नहीं है। और सांप के दांत इतने तेज़ होते हैं कि वह गाय या भैंस के थनों से दूध पीने की कोशिश करे तो वो सहन नहीं कर सकती।
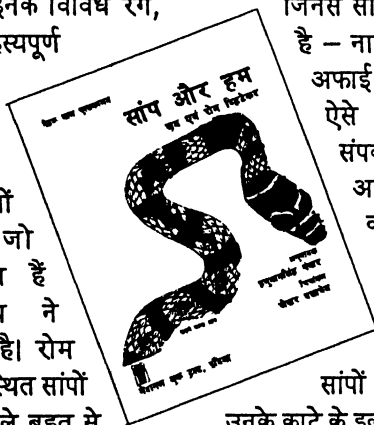
सांपों को लेकर अंधविश्वासों की सूची बनाएं तो यह काफी लंबी हो सकती है और पुस्तक में सभी का उल्लेख करना भी मुमकिन नहीं। बल्कि सांपों के बारे में वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध करा देना ही इन अंधविश्वासों को तोड़ना है। पुस्तक में विषैले और विषहीन सांपों के बारे में विस्तार से लिखा है। भारत में यों तो 50 के लगभग सांपों की विषैली प्रजातियां हैं पर इन में से 4 प्रमुख ऐसे सांप हैं जिनसे सावधान रहने की ज़रूरत है – नाग, करैत, दुबोईया और अफाई। इसके अलावा बहुत से ऐसे विषैले सांप हैं जिनके संपर्क में आम लोग नहीं आते – समुद्री सांप, पिट वाईपर, नागराज, मुंगिया सांप के बारे में भी उल्लेख मिलता है।

पुस्तक में विषैले सांपों के विष का असर और उनके काटे के इलाज की चर्चा भी की गई है। पुस्तक से जानकारी मिलती है कि विषैला सांप काट ले तो कीमती समय को मंत्रों, जड़ी-बूटियों से इलाज में बरबाद नहीं करना चाहिए। एक व्यक्ति कैसे "नाग के काट लेने पर शिथिल पड़ जाता है और खुद अपनी ज़रा भी मदद नहीं कर पाता परंतु उसको विषरोधी सीरप देने के आधे घंटे में ही वह उठकर चाय पीने लग गया" जैसे अनुभवों का समावेश किया गया है।

सांप के काटे की दवाई कैसे बनाई जाती है इस बात का भी उल्लेख पुस्तक में मिलता है।

सभी सांप विषैले नहीं होते। अनेक विषहीन सांपों का दिलचस्प विवरण इस पुस्तक में मिलता है। विषहीन सांपों में से अधिकांश तो ऐसे हैं कि जिनके साथ बच्चा भी खेल सकता है, उनको पालतू बनाया जा सकता है। और इस विश्वास को पुख़्ता करते हैं इस पुस्तक में दिए चित्र जिनमें बच्चों के हाथों में पकड़े सांप दिखाए गए हैं।

सांपों के भोजन के साथ-साथ इनके आर्थिक महत्व तथा इनके द्वारा प्रकृति में संतुलन बनाए रखने जैसे तथ्यों को भी उभारा है। सांपों का प्रिय भोजन चूहे हैं। और चूहे हमारे देश में पैदा होने वाली कुल उपज का लगभग आधा हिस्सा चट कर जाते हैं। पुस्तक बताती है कि कुछ अन्य प्राणी भी हैं जो चूहे खाते हैं। पर सांप ही एक ऐसा प्राणी है जो चूहों का ठीक उनके बिलों तक पीछा करके पकड़कर खा जाता है। लेखकों ने इस ओर भी संकेत किया है कि चूहों को मारने की आधुनिकतम तकनीकें तो फेल हो चुकी हैं। आजकल चूहे दवाईयों को भी पचा जाते हैं। ऐसे में सांप इन चूहों को खाकर उनकी संख्या पर काबू रखते हैं।

सांप के शत्रु भी हैं। पर सबसे बड़ा शत्रु तो मानव है जो एक तो इनकी चमड़ी के लिए मारता है, दूसरा हानिकारक रसायनों को छिड़ककर, जंगलों की कटाई करके इनको खत्म कर रहा है। सांप इस धरती की जीवन श्रृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं और इस कड़ी की हानि पृथ्वी के पूरे जीवन के लिए हानिकारक हो सकती है।

पूरी पुस्तक को पढ़ने पर सांपों के बारे में काफी वैज्ञानिक जानकारी का अंदाज़ा होता है। साथ ही सांपों के बारे में हम जो गलत अहसास पाले रहते हैं वो भी दूर होते हैं। पुस्तक में दिए गए लगभग सभी चित्रों की छपाई साफ है। पर कहीं-कहीं कठिन शब्दों का इस्तेमाल करने से विषयवस्तु की रोचकता कम हुई है और इस वजह से पढ़ने का फ्लो टूटता है।

के.आर. शर्मा

(विज्ञान शिक्षण व लेखन में सक्रिय। छायांकन में रुचि।)
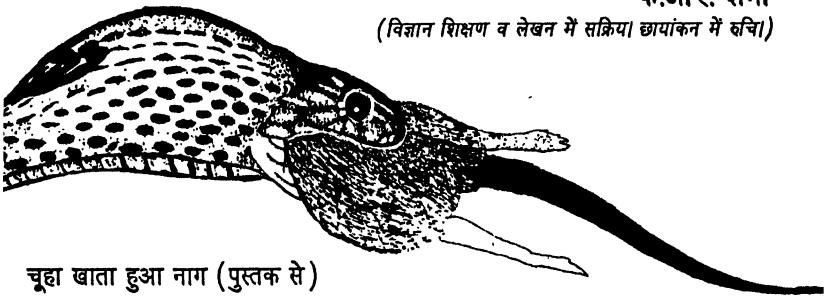
चूहा खाता हुआ नाग (पुस्तक से)

आंकड़े बताते हैं

कॉलेज या यूनिवर्सिटी में कभी सुना है कि दो कक्षाओं के लिए केवल एक ही शिक्षक हो जो दोनों कक्षाओं के छात्रों को एक साथ बिठाकर पढ़ा रहा हो? शायद ही इक्का-दुक्का ऐसे किस्से सुनने को मिलेंगे। पर अगर इसी पहलू को लेकर शिक्षा की बुनियाद प्राथमिक शाला पर नज़र डालें तो चौंकाने वाले तथ्य सामने आते हैं।

शिक्षकों की संख्या के मुताबिक प्राथमिक शालाओं की संख्या (प्रतिशत में):

क्षेत्र \ शिक्षक संख्या	शून्य	एक	दो	तीन	चार	पांच	पांच से ज़्यादा	कुल
ग्रामीण स्कूल	0.58	35.11	28.24	15.36	8.71	5.00	7.00	100
शहरी स्कूल	0.12	5.78	10.17	11.31	14.52	14.29	43.81	100
कुल	0.53	31.92	26.28	14.92	9.34	6.01	11.00	100
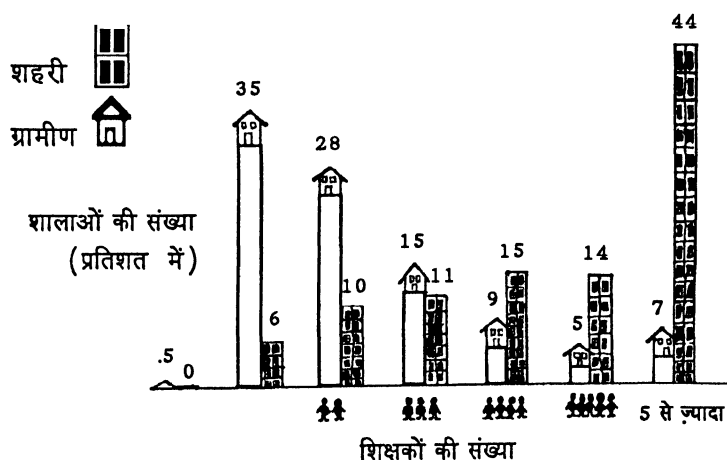
प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर दो कक्षाओं के लिए एक शिक्षक की बात छोड़िए – हिन्दुस्तान के ग्रामीण क्षेत्रों में एक तिहाई से अधिक प्राथमिक शालाएं ऐसी हैं जिनमें पहली से पांचवीं कक्षा के पांच वर्गों के लिए केवल एक ही शिक्षक है। इतना ही नहीं ग्रामीण हिन्दुस्तान में ज़्यादा से ज़्यादा केवल 12 प्रतिशत प्राथमिक शालाएं ऐसी होंगी जिनमें पर्याप्त संख्या में शिक्षक हैं।

शहरी प्राथमिक शालाओं में स्थिति कुछ बेहतर है जहां पर शायद* अधिकतम 58 प्रतिशत शालाओं में ज़रूरत के मुताबिक शिक्षक हैं।

इसका अर्थ यह है कि शहरों में भी 42% प्राथमिक शालाएं ऐसी हैं जहां शिक्षकों की संख्या चार से कम है।
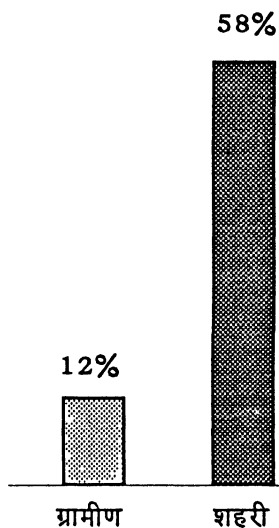
उन शालाओं की प्रतिशत संख्या जहां शिक्षकों की संख्या पांच या पांच से ज़्यादा है अर्थात जहां पर्याप्त शिक्षक हैं।

इतना ही नहीं हमारे यहां ऐसी भी शालाएं हैं जहां शिक्षक हैं ही नहीं! देखने में यह आंकड़ा शायद बहुत ही छोटा लगे – सिर्फ आधा प्रतिशत परन्तु जब हिन्दुस्तान की पांच लाख प्राथमिक शालाओं में से गिनती करें तो समझ में आता है कि ऐसी शिक्षक-विहीन शालाओं की संख्या लगभग 3000 होगी।

* 'शायद' इसलिए कहा गया है क्योंकि बहुत-सी शहरी प्राथमिक शालाएं खूब बड़ी होती हैं जिनमें कई कक्षाओं के दो या दो से अधिक वर्ग भी हो सकते हैं। इसलिए पांच या पांच से अधिक शिक्षक होने पर भी ज़रूरी नहीं है कि उनमें शिक्षकों की संख्या पर्याप्त हो।

(स्रोतः एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा किया गया पूरे भारत का चौथा शिक्षा सर्वेक्षण, 1982)

स. . . टा. . . क

खेत, बगीचे में घूमता हुआ गिरगिट तो सबने देखा होगा। यह फोटो भी गिरगिट का है, ऐसा लगता है न? दरअसल केमेलियन है यह, गिरगिट जैसा ही दिखने वाला। हिंदुस्तान के जंगलों में यह अक्सर पाया जाता है।

केमेलियन की एक खासियत है कि अपने आसपास के रंग के मुताबिक अपना रंग बदल लेता है – अपने आपको छुपाने के लिए। इसीलिए हिंदी में इसे बहुरूपिया कहा जाता है। इतनी अच्छी तरह से रंग बदलता है कि बहुत ही ध्यान से देखने पर ही पता चलता है कि यहां तो बहुरूपिया बैठा है।

दूसरी और भी मज़ेदार खासियत इस चित्र में दिखाई गई है। केमेलियन की जीभ एक सेकंड के पचीसवें भाग में शिकार करके मुंह में वापस आ जाती है। एक क्षण कीड़ा-पतंगा दिखाई देगा और दूसरे क्षण गुम। आपको और हमें पता भी नहीं चलेगा कि कहां गया, क्या हुआ उसका।

सबसे पहले तो शिकार की खोज में बिना हिले-डुले एक जगह बैठा रहता है केमेलियन। उसकी आंखें भी अपने से अलग तरह की होती हैं जो स्वतंत्र रूप से घूम सकती हैं। इसलिए एक-साथ चारों तरफ देखता हुआ डटा रहता है अपनी जगह पर। जैसे ही शिकार दिखा कि उसकी तरफ धीरे-धीरे सरकने लगता है। उस समय दूरी का सटीक अंदाज़ा लगाने के लिए दोनों आंखों को एकदम शिकार पर केंद्रित कर देता है। और फिर जैसे ही उसे लगा कि शिकार पकड़ के दायरे में आ गया है तो – स......टा.......क!

12767

प्रकाशन: एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद - 461 001
मुद्रण: आदर्श प्रिंटर्स, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल - 462 011